।। ॐ ररंकारम् ।।

नारी-मंगल



रचयिता :- परम सन्त श्री जगबीर जी महाराज

सन्त शिरोमणि श्री गुरुदेव रविदास मन्दिर

२/५०, पूर्वी गोकलपुर, शाहदरा, दिल्ली-६४

।। ओ३म ररंकारम् ।।

सन्त श्री जगवीराभिध स्वामी जी विरचितं —

नारी–मंगल

(सचित्र)

पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़

विभाग

गुरु रविदास विद्या पीठ

एवं

पंजाब साहित्य अकादमी

द्वारा

राष्ट्रीय पुरस्कार के रूप

में प्रदत्त

धनागम से इस पुस्तिका

का

आवरण-संवरण पूर्ण

किया गया है ।

—सन्त श्री जगबीर जी महाराज

स्नेहमयी पूज्यनीया जन्मदात्री श्रीमती गौमी माँ
की पुण्य स्मृति में शिक्षाप्रद "नारी मंगल"
पुस्तिका के प्रणेता



संत श्री जगबीर जी महाराज

संस्थापक :- शिष्ठ-मण्डल (पंजीकृत) उ० प्र०

॥ ओ३म ररंकारम् ॥

नारी मंगल

मूलः- लेखक संत श्री जगबीर जी महाराज

[[redacted]]

परोपकार के निमित्त दान का पुण्य सभी लोग प्राप्त करने के इच्छुक होते हैं और उनमें से भी कन्या-दान एक प्रकार से सर्वश्रे:ष्ठ दान कहा जाता है। दहेज प्रथा जैसी घिन्नोनी लोलुप मनोवृत्ति का मनुष्यों के हृदयों से विक्षेप हो जाए, इसी हेतु को लक्षित करके यह नारी-मंगल पुस्तक नामक अनिशा दास के नाम उपहार स्वरूप भेंट की जा रही है; जिससे वह अपने भावी जीवन-प्रवाह एवं निर्वाह करने में सक्षम हो सके। इस कृति के अतिरिक्त लेखक के पास उपहार के लिए और है ही क्या ? जिसको वह इस दहेज बाहुल्य प्रदान न किये जाने वाली नव-युवती बालिका के पाणिग्रहण के समय समर्पित कर सके।

यह किंचित् सा दान-समर्पण या उपहार प्रियादासी अनिशा की सतत सेवा शुश्रुषा एवं आश्रम-मन्दिर के नियम-पालन के कारण दान-दहेज' के रूप में समर्पित किया जा रहा है; जिससे वह भावी-जीवन में अपने किये गये कर्म -उपकारों के कारण हमारा पल्ला न पकड़ सके। उसके इहलोक और परलोक में सदैव सुधार हो—ऐसी ही आशा से...

भूयः भूयः आप सभी का

शुभेच्छुक
सन्त श्री जगबीर जी महाराज
२/५० पूर्वी गोकुलपुर आश्रम एवं
श्री रविदास-मन्दिर दिल्ली- ११००६४
संस्कृत-हिन्दी स्नातकोत्तर
शिक्षा-निषणात एवं शोधक

(सन्त) जगबीर सिंह

प्रथमबार आवृत्तिः-
एक हजार प्रतियाँ।
मास माघ : श्री गुरु रविदास
जयन्ती पूर्णिमा सं० २०४६ वि०
तदनुसार
१२ - २ - १९९१ई०

प्रकाशक:-
सन्त श्री जगबीर जी महाराज
प्रथम गद्दी ग्राम असारा एवं
द्वितीय गद्दी-आश्रम एवं गुरु
रविदास-मन्दिर २/५० पूर्वी गोकुलपुर
दिल्ली ११००६४

मुद्रक:-
अरविन्द मुद्रणालय
बी-८६ पूर्वी गोकुलपुर
निकट आश्रम सन्त श्री
जगबीर जी महाराज
दिल्ली ६४

मूल्य—उपहार "एक हजार प्रतियाँ अनिशादास के पाणिग्रहण के लिए"

प्रास्तावित

आज के युग में 'धर्म में प्रति हान-बाध और विक्षेप' हो रहा है; जिसका भावी परिणाम धर्म न होकर अधर्म रह जायेगा, ऐसी मनीषियों की विचारणा हैं। 'नारी मंगल' कई वर्षों पूर्व पाण्डू लिपि के रूप में किसी अमुक स्त्री-जात्या के नाम लिख दी गई थी, परन्तु उसके सौभाग्य में यह न होकर, अनिशा के सौभाग्य में यह सहायक हो रही है तथा यह उसी के नाम निक्षेप रूप से समर्पित कर दी गई हैं।

पुस्तक के आवरण, बन्धन एवं आकार के छंटन के लिए लेखक के पास न सुलभ अवकाश रहा है और न धन-संचयिन रहा है। इस वर्ष पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ में 'श्री गुरु रविदास जी के जीवन-दर्शन' पर होने वाली संगौष्ठी से राष्ट्रीय पुरस्कार की प्राप्ति से; जो धनागम हुआ है; उसी के माध्यम से इस पुस्तिका का शेष-व्यय पूर्ण कर दिया गया है। पंजाब वि० वि० चण्डीगढ़ 'गुरु रविदास चैयर एवं पंजाब साहित्य अकादमी' के सम्मिलित समायोजन दिनांक २३-२४ अक्तूबर सन् १९९२ ई० के लिए भी लेखक का हार्दिक स्वागत है; जिसके माध्यम से यह किंचित् जन राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त करने का आभारी हुआ है।

जन्म, मंत्र, तप, समाधि और औषधि-इन पाँचों से ध्यानजन्य चित् उत्तम होता है; क्योंकि राग-द्वेषादि जो नाना प्रकार के वासनात्मक आ:शय हैं, उनके पनपने में वह सहायक नहीं होता। महर्षि पतंजलि ने तभी तो अपने योग-दर्शन में ध्यानजन्य चित्त की निम्न सूत्र द्वारा महत्ता बताई हैं, यथा—ध्यानमनाशयम् ॥ यो० द० ४ : ६

शुभाशुभ कर्मो के विभाजन के निमित्त महर्षि जी ने ऐसा भी सूत्र प्रस्तुत किया है :-

कर्मा शुक्ला कृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् । यो० द० ४ ७
अर्थात् योगी जनों के कर्म भी संसारी मनुष्यों के समान चार

प्रकार के होते हैं, जैसे (१) अशुक्ल-अकृष्ण कर्म अर्थात् पाप और पुण्य से रहित केवल सात्विक और पारमार्थिक कर्म; जिनमें वे संसारी लोगों के समान लिप्त नहीं होते। तीन कर्म संसारियों के लिए विशेष-कर ये है (२) कृष्ण कर्म अर्थात् पाप (३) शुक्ल कर्म अर्थात् पुण्य और (४) शुक्ल व कृष्ण कर्म अर्थात् पाप और पुण्य से मिश्रित कर्म। इस पुस्तिका को निबंधित करके, एक नव युवती 'पराये धन' के निमित्त उसके पाणिग्रहण के समय उपहार करने को-संसारी लोग कौन सा कर्म समझेंगे ? यह उनके निज के विवेक पर आधारित है, क्योंकि,-

सोरठा :- योगी संत के मान, अकृष्णाशुक्ल दो कर्म।
अन्य जनों के जान; कृष्णाकृष्ण अरु शुक्लतम ।। १ ।।

गुण उपजत है जोय; त्रिविधि कर्मन पाक तैं।
प्रकट आशय होय; तिहि गुण युत स्वरूप की ।। २ ।।

जैसा गुण अरु रूप, कर्म शुभाशुभ पाक के।
तैसा फल सा नूप; जैसी जाकी वासना ।। ३ ।।

कारज छिप रहत है, कारण के आधीन।
कछु न होय कुछ किये, कारज कारण हीन ।। ४ ।।

मेरे 'शिष्ठ-मण्डलीय' सदस्यों अथवा शिष्यों ने इस प्रकाशित पुस्तक को आवरण सहित संस्करणित-संवरणित कराने की कोई चेष्टा ही नहीं की और न मेरा रुग्ण देहात्मा ही किसी अज्ञात विषैले कीड़े के द्वारा दंसित किये जाने पर, इस कार्य को पूर्ण ही कर पाने की सामर्थ्यता रख सका। देश-काल-परिस्थिति तथा कुछैक कारणों के सम्मुख आने पर, इस पुस्तक के आवरण को तुरन्त तैयार कराकर इसको आकार प्रकार से सँवारा रूप प्रदान किया गया है। यदि पाठक नर-नारियों की दृष्टि में, किसी प्रकार का भाव-प्रदर्शन अशोभनीय लगे एवं कोई अशुद्धी रही हो तो, वे कृपा करके ऐसे तुरता-फुरती द्वारा किये गये कार्यों पर ध्यान न देकर हमें कृतार्थ करें।

परहितार्थ अथवा परोपकारार्थ कोई भी कार्य सुरुचिपूर्ण मन से किया जाता है। धीरता इसी बात में होती है कि शारीरिक अक्षमता

और धनाभाव के कारणों के होते हुए थी-मनुष्य अपने कृत-कार्यों को पूर्ण करें, यही उसकी सफलता है और परोपकारी जीवधारी तो सदैव दूसरों का ही हित-चिंतन करके अपने आप को स्वाहा किया करते हैं। कहा भी है :-

दोहा :- तरुवर सरवर सन्तजन, चौथे वर्षे मेह।
परमार्थ के कारणै - साधू धारै देह॥

शिष्ठ-मण्डलीय नर-नारियाँ ही नहीं, अपितु सभी वर्गीय बुद्धि-जीवी इस पुस्तक के पठन-पाठन से लाभान्वित हो-ऐसी आशा से इस पुस्तक का निबन्धन किया गया है।

मुझ जैसे संत प्रवृत्ति वाले लेखक ने, जो भी तथ्यात्मक बातें गृह-गृहस्थी सम्बन्धी, इस 'नारी मंगल' नामक पुस्तक में लिखी हैं; यदि उनमें से सामाजिक मूल्यों के अनुरूप किसी प्रकार की भी अशोभनीय बातें लिखी गई हों तो, पाठकगण अपना सुचारू-सुझाव देकर हमको कृतार्थ करने का कष्ट करें, जिससे हम अगले संस्करण में, यदि हो सका तो, उसका शुद्धिकरण करके, आप सभी की मनोनीति का निवारण कर सकेंगे।

अन्ततः मुझे एक प्रकार की आशा ही नहीं है; अपितु पूर्ण विश्वास भी है कि वर्तमान समय में प्रचलित दान-दहेज की परिपाटी का आप सभी मिलकर उन्मूलन करेंगे; जिससे वर-पक्ष वालों की ओर से-कन्या-पक्ष वालों से, सुन्दर कन्या के पाणिग्रहण के साथ ही साथ, अधिक से अधिक धन-सम्पत्ति प्राप्त करने की अभिलाषित रीति बढ़ न सके। अनिशादास एक ऐसा उदाहरण है, जिसके माता-पिता व बन्धु-बांधव अपनी निर्धनता के कारण, इस दसवीं कक्षा उत्तीर्ण वरयोग्य लड़की का विवाह-संस्कार समय पर न कर सकें। यह किंचित सा दान दहेज के रूप में पुस्तक उपहार "नारी मंगल" इसी के लिए समर्पित किया जा सकेगा, जिससे इस पद्धति का अनुसरण ज्ञानी, साधु, सन्त विवेकशील और सभी गृहस्थी कर सकेंगे। आशा से आप सभी का :-

सन्त श्री जगबीर
संस्थापक :- शिष्ठ मण्डल (पंजीकृत)

नारी मंगल की भूमिका

सुव्रते ! अनिशा यह तुम्हारे लिए प्रतिबोधात्मक लेख है। सन्त श्री रविदास जी ने चारित्रिक एवं शिक्षाप्रद उपदेश दिया है। सांकेतिक रूप से उनकी एक विमल-वाणी में, जो भाव-बोध कराया गया है, वह बालिकाओं के सुलक्षणों की ओर इंगित करता है। उनकी एक वाणी ऐसा प्रतिबोधित करती है कि :-

करो जतन सखी-साईं के मिलन की ।। टेक ।।

गुड़िया गुडवा सूप सुपलिया, तज दो बुद्धि लडकियाँ खेलन की ।।१।।

भूमियाँ और भवानी छोड़ो; ये मारग चौरासी चलन की ।।२।।

ऊँचा महल अजब रंग बंगला, साईं की सैज लगी फूलन की ।।३।।

कहै रविदास सुनो री लड़कियों, त्रास मिटै थारे जन्म-मरण की ।।४।।

मानवों को भूलोक, खेचरों को भुवर्लोक, पुण्यात्माओं को स्वर्लोक, ऋषि-मुनियों को महर्लोक, उपासकों को जनलोक, तपोनिष्ठों को तप-लोक, अमरात्माओं को सत्यलोक की प्राप्ति होती है। नर हो या नारी हो; इन लोकों की प्राप्ति के हेतु पारस्परिक दौड़ लगी रहनी चाहिए; क्योंकि ऐसी प्राप्ति के हेतु सुचारिता की अत्यधिक रूप से अपेक्षा की जाती है। काम, क्रोध, मद, लोभ और अहंकार के केवल माया से ही अभिभूत होते हैं, जिससे देहात्मा के अन्तःकरण में विकार उत्पन्न होता है और यह जीवात्मा अन्तःकाल में रौरव, कुंभीपाक और अविचि आदि महाघोर नरकों की यातनाएँ भोगता है। 'माया से विमोहिता न हो जाय'—ऐसे भाव की असिद्धी के लिए गुरु रविदास जी ने अपनी विमल

वाणी के द्वारा मीराबाई को उपदेश दिया है, जिसके भाव को तुमको बोध कर लेना चाहिए। उनका धार्मिक-उपदेश इस वाणी के द्वारा स्फुटित हुआ है :-

शब्द :- चन्दा दरशै नाय-माया हे रंग बादली ॥ टेक ॥

काया में माया मिली, ज्यूँ पत्थर में आग।
जो तेरी मनसा हरि मिलन की, चकमक होकै लाग ॥ १ ॥

चोर चुराई तूम्बडी, डारी जल के माय।
वह दाबै वह ऊभरै, पाप न छानी जाय ॥ २ ॥

काम क्रोध के उठै बदरवा, गरज रहे अहंकार।
आशा तृष्णा बिजली चमकै, भीग रहा संसार ॥ ३ ॥

कहि रविदास सुनो हे मीरा, कभी निबल हो जाय।
एक नाम की खड़ी हाजिरी, चन्दा दशगे आय ॥ ४ ॥

गुरु रविदास जी ने अपनी एक दूसरी शिष्या केशिया को, उसके पाणिग्रहण संस्कार के समय जो उपदेश दिया था; उस अभिव्यंजनात्म कथन की शैली को उनके मुखारविंद से निःसरित वाणी द्वारा, दृष्टान्त के रूप में, इस प्रकार अभिव्यक्त किया जा रहा है :-

शब्द :- टांडा तेरा लध चला हे; बंजारिन अखियाँ खोल ॥ टेक ॥

टांडा था तो लध चला- तू बिरहणि रही सोय।
जागै तो तू एकली है; नैंन गंवाये रोय-रोय ॥ १ ॥

चंदन चौकी बिछ रही; जामैं जड दिये लाल जुहार।
हीरों की हुण्डी जड़ी हे; जड़ गये चतुर सुनार ॥ २ ॥

धूनी-धामन बन्द किया; ठण्डे पड़े अंगार।
अहरण खुड़का बन्द हुआ हे, उठ गया मित्र-लुहार ॥ ३ ॥

कहै रविदास सुन केशिया; है गति अपरम्पार।
सन्तों ने लाध्या नाम धनी का है, विष लाध्या संसार ॥ ४ ॥

गुरु रविदास जी ने पाणिग्रहण करने वाले सतवर के लिए भी तो सांकेतिक रूप में ऐसा उपदेश दिया है :-

शब्द :- बणज कैसा कीना रे, बंणजारे हो व्यौपारी ।। टेक ।।

एक ढब घली लौंग इलायची; एक ढब सांभर खारी ।
सन्तों ने भर लिया नाम धनी का; पूर्ण खेप उतारी ।।१।।

पाट्टी गूण बैल हुऐ वोद्दे; क्या कर ले बंणजारी ।
अब कै लज्जा राख साँवरियां; ले लई शरण तुम्हारी ।।२।।

आगै नगरी वसै ठगों की, रहो खबरदार हशियारी ।
चौकस रहकै पहरा देना, कभी जावै खैप तेरी मारी ।।३।।

पूँजी-माल बिराना वरता, देनी नहीं तैं विचारी ।
कहै रविदास सुनो रे सतवर, हुआ चोर सरकारी ।।४।।

काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह ही नहीं, अपितु महामोह, तामिस्त्र, अंध तामिस्त्र और घोर कुकृत्य-ये अज्ञान की घोर मनोप्रवृतियाँ हैं, जिनकी अति हो जाने पर नर-नारी दोनों ही मानव-वर्ग अज्ञानी वन जाते हैं और उन्हें इहलोक तथा परलोक दोनों का सुलभ सुख भी प्राप्त नहीं हो पाता है ।

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, सन्यास और वानप्रस्थ ये चार आश्रम हैं । ब्रह्मचर्य और गृहस्थ दोनों आश्रमों का अटूट सम्बन्ध हैं । गृहस्थाश्रम में नर और नारी के पारस्परिक मोह-फांस एवं प्रेम-विलास का जो स्वच्छ सम्बन्ध है, उसको तोड़ने पर ब्रह्मचर्य का तेजस्व क्षीण हो जाता है । समय की परिधि में चारों आश्रम बँधे हैं और सभी के लिए एक औचित्यपूर्ण ढंग के पारस्परिक मिलन के सामाजिक संकेत को अथर्व वेद इस प्रकार करता है :-

"तत्कृणमो ब्रह्म वो संज्ञानं पुरुषेभ्य: ।। अथर्व वेद ३-३०-४०

अर्थात् हम सभी को मिल जुल कर, ऐसी प्रार्थना परमात्मा से करनी चाहिए, जिससे मानव-समाज में नर और नारी के अन्त:करणों में संमति और सद्‌भावना का विकास हो। ऐसी प्रवृत्ति का नाम ही गृहस्थाश्रम में निवसित नर और नारी के पावन सम्बन्ध का है; और

"न ऋते शान्तस्य सखाय देवा। यजुर्वेद ४-१३-११

इसका अभिप्राय: यह हुआ कि हम सब-चाहे नर हो या नारी हो-परस्पर मिल कर अपने-अपने धर्म-कर्म के अनुसार अपना-अपना कर्तव्य निभाते हुए जीवन-यापन करते रहें। हम सभी को ऐसा भी सोचना चाहिए—कि-"अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन" अर्थात् पराई वस्तु अथवा धन-सम्पत्ति की प्राप्ति की आशा मनुष्य को नहीं रखनी चाहिए, क्योंकि दान, दहेज और दूसरों को हानि पहुँचा कर प्राप्त की गइ सम्पत्ति से कभी भी आत्म-तुष्ठि नहीं हो सकती।

जो नीचे वृत्तियाँ ब्रह्मचर्यादि-आश्रमों के लिए प्रस्तुत की गई हैं; उनके विपर्यय-आचरण से प्रत्येक आश्रमी पतित होता है, चाहे नर हो अथवा नारी हो-वे ये हैं :-

१- सावित्र वृत्ति			१- वार्ता वृत्ति
२- प्राजापत्य वृत्ति	ब्रह्मचर्य ...	गृहस्थ	२- संचय वृत्ति
३- ब्रह्म वृत्ति	आश्रमी	आश्रमी	३- शालीन वृत्ति
४- बृहत् वृत्ति			४- शिलच्छ वृत्ति
१- कुटीचक्र वृत्ति			१- वैखानस वृत्ति
२- बहूदक वत्ति	सन्यास ...	वानप्रस्थ	२- बालखिल्य वृत्ति
३- हंस वृत्ति	आश्रमी	आश्रमी	३- औदुम्बर वृत्ति
४- परम हंस वृत्ति			४- फैनस वृत्ति

सुव्रता-अनिशा-धन या स्वर्णादि की संचयन वृत्ति के कारण आत्म-तृप्ति नहीं होती, अपितु-सरल-स्वभाव रखने से होती है; शीलता

धारण करने से होती है और सन्तोष आदि रखने से होती है। व्रत कर्म, मानसिक, वाचिक और कायिक तीनों ही तीन भेदों से करने चाहिए। सत्यनिष्ठा एवं शीलव्रतता, प्रथम प्रकार का; सत्साहित्य का अनुशीलन; मिथ्या संभाषण न करना और न किसी पराये पुरुष से अनुचित व्यवहार करना-द्वितीय प्रकार का भेद है-मद्य-भक्षण एवं सुरा पान का त्याग करना, सडक-बाजार में घूम कर प्रलाप न करना और भारतीय नारी के आदर्श को ग्रहण करना और तृतीय प्रकार का जो यह तुम्हारे लिए व्रत और बाला धर्म का भेद है। क्योंकि :-

व्यास ऋषि घोषणा कर गये हैं कि शूद्रों और कलियुग के साथ नारियों को भी धन्यवाद हो-इसीलिए कि उनकी महत्ता का प्रदर्शन स्पष्ट रूप से भावी युग करेगा। वर्ण व्यवस्था तथा धर्माचरण के नष्ट हो जाने से समाज में अव्यवस्था, दुराचार तथा पाप वृत्ति का विकास होने लगता है। इस प्रकार पापों से छुटकारा पाना कोई सरल काम नहीं है।

'पराया धन' महावाक्य प्रायः कुँवारी लडकियों के लिए प्रयुक्त होता है। बात वास्तविक है, क्योंकि प्रत्येक युग विशेष में स्वरूप विशेष की महत्ता होती है। स्वरूप के पीछे माया-धन की गति को गौण-स्थान देना श्रेष्ठ होता है। प्रत्येक गृहस्थ की कन्या-कँवारी, ब्रह्मा जी की मानसी पुत्रियों, सरस्वती, अमिताक्षरा, एकाक्षरा, विश्वेशरी, ज्ञाननिधि, विभावरी आदि की भाँति पूज्या और पुंनाम नरक से बचाने वाली होती हैं-जो पराये धन के रूप में पराये अंश-वंश के जोडियां-संयोगी के साथ ब्याह दी जाती है। इससे बढकर और कितना बड़ा कन्यादान हो सकता है। कहते हैं-दान विधि-समान होना चाहिए। दहेजादि की घिनौनी प्रथाओं ने लड़कियों की आत्मिक सुख-शान्ति को हनन कर दिया है। वर योग्य कन्याएँ-सौम्य-स्वभाव-सभ्य और आचरणशील वरों के साथ नहीं विवाही जा रही हैं-यही इस युग की दहेज प्रथा का परिणाम है और उल्टे लोग कहते हैं :- नारी नहीं नौरंगी है। नौरंगी नहीं रस रंगी हैं। ढक लै तो कुल के कुल को ढल लै। नहीं तो नंगी की नंगी है। इसका भावार्थ पाठकगण स्वयं समझ जायेंगे।

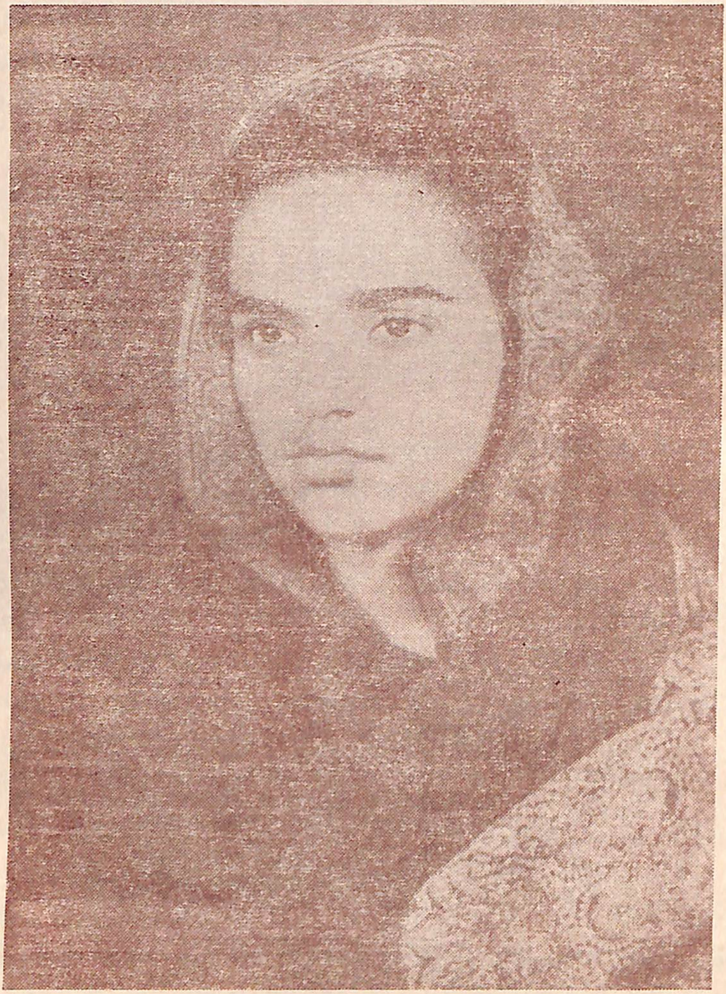
ओइम् ररंकारम्

श्लोक :—एवं वादिनी देवर्षौ पार्श्वे पितुरधमुखी ।
लीला कमल पत्राणि गणयामास पार्वती ।।

कालिदास कृत : कुमारसंभवम् षष्टं सर्ग

अर्थ :—जिस समय हिमाचल के साथ बैठे हुए, नारदजी, 'शिव और पार्वती' के भावी विवा के सम्बन्ध में, परस्पर वार्तालाप कर रहे थे, उसी समय, उनके समीप बैठी हुई, पार्वती लज्जावश अपना सिर नीचा किये हुए लील कमल दलों को गिन रही थी ।

अवहित्था संचारी भावावेश में :—



—कुमारी अनिशादास

किसी 'पराये धन' या कन्या-कुँवारी का पाणिग्रहण-संस्कार पूर्ण विधि पूर्वक किये जाने पर, उसको अपने वर के साथ; पराये घर को जाते हुए देखकर, जब किसी सन्त-महात्मा का हृदय ही करुणाभावों से भर कर उद्वेलित हो जाय, तब तो उसके माता-पिता एवं सहजनों के अन्त:करणों की गति कैसी होती होगी ? जिनसे उसका वियोग हो रहा है ।

—सन्त श्री जगबीर जी महाराज

सद्भावनाएँ

चित्राँकित आकृति अनिशा दास (निशा) की है। इसके सभी जन मेरे आश्रम, एवं सन्त शिरोमणि गुरु रविदास महाराज जी के मंदिर पर आते रहते हैं तथा मेरे प्रति अपनी सद्भावना व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि :-

ॐ ररंकारम्। गुरू मंगल: नमो नम: नमस्कार गुरु देव जी।
सन्त शिरोमणि श्री रविदास जी महाराज नम:।
परम सन्त श्री जगवीर जी महाराज नम:॥

युगों-युगों से संत-कवियों एवं महापुरुषों की अमर गाथाएँ प्रस:रित होती हुई चली आ रही है। संत जन समय-समय पर इस भू पर पतितों के उद्हार के हेतु अवतरित होते आ रहे हैं; जिन्होंने ज्ञान-मार्ग के कपाट खोल कर मनुष्य-समाज को इस संसार से तरने के लिए "मुक्ति पदार्थ" प्रदान किया है। उन्हीं सन्तों एवं महापुरुषों की कड़ी में "सन्त शिरोमणि श्री रविदास जी महाराज" का नाम अग्रगणीय है। उन्होंने अस्पृश्य (अछूत) समाज व नारी वर्ग के उत्थान के लिए ज्ञान का सन्देश इस नश्वर संसार को दिया है!

हमारा सारा परिवार बहुत समय पहले से ही परम सन्त 'श्री गुरु जगबीर जी महाराज' के नाम की चर्चा सुन रहा था और जब से उनको शरण में हमारा सारा परिवार आया है, तब से ही सद् गुरुदेव श्री रविदास जी महाराज की भक्ति के नियमों एवं आदर्शों का पालन कर रहा है। हमारे परिवार को दीक्षा देकर सन्त श्री जगबीर जी महाराज ने हमारे ऊपर पड़ी हुई दैविक आपत्तियों का निवारण किया है।

हमारे परिवार में त्रर योग्य लड़की 'निशा' जिसका नाम श्री गुरु जी ने; संत परम्परा के अनुसार 'अनिशा दास' रख दिया है। वह कई वर्षों से ला-इलाज हो चुकी थी; जिसको हमने हर प्रकार के हकीम, डाक्टर, मुल्ला-मौलवी, जादू-टौना करने वाले औझाओं और काली-मशानी-दुर्गा के भक्त-सयानों एवं महात्माओं आदि, सभी को दिखाया; परन्तु कहीं से भी उसका स्वास्थ्य-लाभ नहीं हुआ। वह मृत्यु के सदृश्य साक्षात् दिखाई देते लगी। श्री गुरु की शरण में अनिशा दास को डाल दिया गया और उन्होंने उसके प्राणों को बचा लिया है। एक वर्ष तक

कठिन दौर से गुजर कर हमारे परिवार ने गुरु जी महाराज के कठिन नियमों व व्रतोपासनाओं का पालन भी किया है। भविष्य में जीवन पर्यन्त उनके आदर्शो का पालन भी किया जायेगा। हम अपने श्री गुरुवर के कृत्यों के आभारी हैं, जिन्होंने हमारे लिए मार्ग-प्रदर्शन करके; ज्ञान-भक्ति एवं शान्ति का मार्ग दिखाया है।

प्रस्तुत पुस्तक "नारी मंगल" जो महाराज जी ने अनिशा दास के नाम उपहार स्वरूप अर्थात् दान-दहेज के निमित्त उसके पाणि-ग्रहण के समय के लिए एक हजार प्रतियों के रूप में, रखी है; उस कृति के लिए हमारी ओर से कोई आक्षेप नहीं है। यह पुस्तक रविदासीय समाज पाठक छात्र-छात्राओं एवं भक्त जनों के लिए कल्याणकारी होगी।

दोहा :- गुरु चरणों में जायकर; ले ली हमने ओट।
गुरु जगबीर की शरणै; कटे कुमन के खोट॥

अनिशादास का पाणि-ग्रहण संस्कार (दान-दहेज रहित) श्री गुरुवर की आज्ञानुसार सम्पन्न किया जा सकेगा। हमको उनकी आज्ञा में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना है। उनकी अनुमति के अनुसार ही दान-दहेज प्रथा के नियमों का पालन किया जायेगा। महाराज जी की ओर से प्राप्त पुस्तक उपहार सहर्ष स्वीकार करते हुए; हम भूयः भूयः उनके आभारी हैं।

अनिशा दास की माताजी | अनिशा दास के पिताजी
श्रीमती राम कौर | श्री राम स्वरूप

लक्ष्मण पुरी मुहल्ला, गली नं० ४, मेरठ (शहर)

ह० व अंगूठा श्रीमती रामकौर | अ० नि० व हस्ताक्षर रामस्वरूप
दिनांक २६-१-९१ ई० | २६-१-९१ ई०

पिता जी
रामस्वरूप
२६-१-९१

माता जी

नि० अं० रामकौर

भ्राता जी
ताराचन्द

अनिशा के प्रति सद्भाव

सूत्र :- 'विवाह पूर्वोव्यबहार:' :- अर्थात् सब प्रकार के वैद्य व्यवहार या पदार्थ चतुष्ठय: धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नैसर्गिक रूप से विवाह पर ही निर्भर रहते हैं। विवाह के पश्चात् ही सब प्रकार के सम्बन्ध-बन्धन आदि व्यवहारों का प्रारंभ होता है-अनिशा।

पूर्वाचार्यों ने चार श्रे:ष्ठ और चार ने:ष्ट विवाह संस्कारों की परिगणना इस प्रकार की है :- (१) ब्राह्म (२) प्राजापत्य (३) आर्ष और (४) दैव-ये चार प्रकार के शुभ विवाह होते हैं तथा (१) गान्धर्व (२) आसुर (३) राक्षस और (४) पैशाच-ये चार प्रकार के अशोभनीय विवाह होते हैं,-अनिशा।

विवाह संयुक्त व्यवहार में उपहार, दहेज, दान, समर्पण, गुप्त-धनादि अर्पित करना प्रतिषिद्ध नहीं माना गया है। उपरोक्त चार श्रे:ष्ठ प्रकार के विवाहों में से सबसे श्रे:ष्ठ दैव-विवाह होता है; जिसमें ब्रह्मा, उद्गाथा और होतृ के साथ मिलकर ऋत्विक वर-कन्या को हवन-यज्ञवेदी पर बैठाकर हवन करता है और भाँवरी डाली जाने की परिपाठी पूर्ण करता है। उसी समय कन्या दान (कनाहल); जैसा ज़िस के सगे-सम्बन्धियों के मन भाये-दिया जाता है-अनिशा।

जिस विवाह सम्बन्ध में वर-कन्या एक साथ परस्पर मिल कर धर्म के आचरण की प्रतिज्ञा करके विवाह करते हैं; उसे प्राजापत्य-विवाह कहते हैं; ऐसा विवाह तुम्हारी स्वैच्छा पर निर्भर है-अनिशा।

तुम्हारे माता-पिता और बन्धु-बान्धवों की प्रेम-पूर्व अनुमति लेकर

'नारी-मंगल' नामक यह पुस्तिका तुम्हारे ही हेतु एक हजार प्रतियों के रूप में, स्त्री धन के वृत्तिदान अर्थात् तुम्हारी भावी जीविका के हेतु उपहार स्वरूप समर्पित की जायेगी और आभरणयोग्यभूषणादि आवन्ध्य-दान और कुछ नहीं-अनिशा।

निर्देश वचनों के द्वारा अनिशा तुम्हें विनय की शिक्षा प्रदान की गई है। तुम निवेशी और उजड़ मत बनना और गुरु-शिक्षाओं को गार्गी, सावित्री, अपाला, सीता और शकुन्तला की भांति अपने हृदयंगम करते हुए अपने गृहस्थाश्रम का पालन करना। आत्मघात किसी भी स्थिति परि-स्थिति में करने का साहस मत करना, क्योंकि ऐसा करने से मानव-नारी प्राणी नरक गमन करता है और अकाल मृत्यु को प्राप्त करके भूत-व्यंथरादि की दूषित योनियों में भ्रमता है। स्त्री जाति को अपने पति से द्वेष नहीं करना चाहिए, क्योंकि ":अलौहमयं निगडं कलत्रम्" अर्थात् स्त्री जाति के लिए बन्धन एक लोहे की बेड़ी के समान होता है। उपगता पुत्री के समान सद्गुरु के सकाश से जो शिक्षा तुमने पाई है; उसका पालन करना तुम्हारा 'धर्म-पारायणा' का कर्तव्य होगा। अतएव :-

नाल्पदोषाद्बहुगुणास्तज्यन्ते, यत् नास्ति रत्नमखण्डितम्।

कदाचिदपि चारित्रं न लंघयेत्, कदाचिदपि मर्यादां नातिक्रमेत् च ।।

अर्थात् थोड़े से ही दोष के कारण अधिक गुणी मनुष्य को नहीं त्यागना चाहिए, क्योंकि रत्न में भी छिद्र किये जाने पर उसे धागे में पिरोया जा सकता है। कभी भी अपने आप में चारित्रिक लांछन को नहीं लगने देना चाहिए और कभी किसी भी दशा में अपने कर्म-धर्म की मर्यादाओं को तोड़ना नहीं चाहिए।

अनिशा! धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र में गार्त करने वाले 'महाभारत' युद्ध में निरत होने वाले 'कौरव-पाण्डव' दोनों कुलीन वंशों के धर्म-कुल क्ष:य के कारण; संग्राम को होते हुए जानकर-गाण्डीव धनुषधारी वीर अर्जुन; अपने सदुपदेशक गुरु श्री कृष्ण जी की 'युद्ध करने की आज्ञा' का निषेधात्मक उत्तर देते हुए कहते हैं कि :-

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्मा सनातना:।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ।।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रिय:।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्ण सकर:।।

श्रीमद् भागवत गीता प्र० अ० श्लोक ४०-४१

हे देवस्वरूप श्री कृष्ण जी यह प्रत्यक्ष दोष तो मेरे लिए ही लगेगा- यदि मैं अपने कृतनिश्चय से अपने ही कुल-परिवार वालों का हनन करूँ। जिस प्रकार एक ही संगौत्र में समुत्पन्न मनुष्य धृष्टतापूर्वक एक दूसरे का परस्पर घात-प्रतिघात करने लगते हैं; तब महाभयंकर महापाप का कारण कुल-मर्यादा-धर्म-कर्म आदि सभी का क्षय: करने वाला हो जाया करता है; जिस प्रकार महाभयंकर दीर्घ सूर्य ताप के कारण बाँसों में परस्पर रगड़ा लगने पर अग्नि प्रचण्ड रूप धारण करके उन्हीं बाँसों के साथ अन्य घास-फूँस और आश्रित जीव-जन्तुओं का नाश किया करती है। ऐसी मानसिक बिचारणा करके, मैं यही सोच रहा हूँ कि युद्ध के पाप-कृत्य कर्मों के कारण मेरा सारा का सारा कुल परिवार विनष्ट हो जायेगा और मेरे ही कुल-धर्म और मर्यादायुक्त सदाचारणों की क्षति होगी एवं मेरे ही कुल-परिवार में अधर्म ही अधर्म छा जायेगा। और दूसरी बातें मैं यही सोच रहा हूँ कि जब अधर्म की मेरे कुल-परिवार में ऐसी अवस्था हो जायेगी, तब तो अच्छे-बुरे पुण्य-पाप कर्मों के करने की विचारणा शक्ति भी सदैव के लिए कुँठित हो जायेगी। अधर्म से अभिभूत होकर सभी मेरे पारिवारिक कुकृत्य करने लगेंगे और मेरे ही परिवार की कुल-नारियाँ उच्छृंखल स्वभाव की होकर; अपने मान-सम्मान एवं विधि-विधान का ध्यान न रखकर कुलटा, वेशिक- कलज्ञा, अथवा पुँचली हो जायेगी। जो उनसे सन्ततियां उत्पन्न होगी, वे वर्ण संकरता को ही प्राप्त होगी।

ज्ञानेश्वरी टीका में ज्ञानदेव जी उपरोक्त भावों के स्पष्टीकरण करने के हेतु ऐसा लिखते हैं कि :-

जिस समय आचार और इन्द्रिय-निग्रह न होकर सुवृत्तियों का

विनाश होता है, उस समय इन्द्रियाँ स्वच्छन्दता पूर्वक इधर-उधर दौड़ने लगती हैं-जिससे कुलीन स्त्रियाँ भी भ्रष्ट हो जाती हैं। श्रे;ष्ठ लोग, निकृष्टों में जाकर मिल जाते हैं, जिससे जाति-धर्म की जड़ ही उखड़ जाती है। ऐसे कुलों में महापालकों का उसी प्रकार संचार होने लगता है, जिस प्रकार चौमुहानी पर रखी हुई बलि पर कौओं के झुंड के झुंड चारों ओर से आ-आकर एकत्रित होते हैं। ज्ञा० टी० प० अ० पृष्ठ २१

वीर अर्जुन ने युद्ध न करने के अपने मन के विषाद का आगे ऐसा उत्तर दिया है :-

संकरो नरकायैव कुल घानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्त पिण्डोदकक्रिया: ।।
दोषैरेतै: कुलघाना वर्ण-संकर कारकै: ।
उत्साद्यन्ते जाति धर्मा: कुल धर्माश्च शाश्वत: ।।
उत्सन्न कुल धर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनु शुश्रुम ।।

श्रीमद्भागवत् गीता प्र० अ० श्लोक ४२ से ४३ तक

हे श्री कृष्ण जी ! अपने कुल परिवार का घात करने वाले सहित वर्ण-संकरता से उत्पन्नों को नरक निवास मिलता है और सारा का सारा कुल-वंश पाप कर्मों के कारण भ्रष्ट होकर अपने स्वर्गस्थीय पूर्व पुरुषों को भी नरक में ही खींच लेता है। पिण्ड-दान-तिलोदक न देने वाले, नित्य-नैमित्तिक धार्मिक कृत्य-कर्म न करने वाले एवं अपने पूर्वजों के नाम तक न लेने वाले वर्ण-संकरों से एक मात्र कुल-वंश की मर्यादा ही क्षीण हो जाती है-ऐसा मुझसे कराकर मुझे आप दोषी ठहरा रहे हैं, क्योंकि ऐसा दुष्कर्म मैं नहीं करना चाहता हूँ।

वर्ण-संकरता के कारण जो कुल परिवार को विनष्ट करने वाले नरकगामी महापातक होते हैं, उनके संसर्ग से सन्निकट रहने वाले और भी कुल परिवार आचरणहीनता को प्राप्त करके भ्रष्ट ही होते हैं,

जिससे उनका जाति-धर्म और कुल-धर्म सदैव के लिए भ्रष्ट होकर निन्दा का पात्र होता हैं। इसीलिए हे जनार्दन ! जब कोई कुल-परिवार बुरे संसर्गों के कारण सदैव के लिए नरकगामी हो जाता है और उसका किसी भी भांति उद्धार नहीं हो पाता है तो मैं अपने कुल परिवार के संहार के लिए, युद्ध में निरत होकर; उसी में उत्पन्न हुए अपने कुल वंशजों का संहार करके महापातकी नहीं होना चाहता हूँ।

अर्जुन की कुल क्षय की संभावना पूर्णतः इस प्रकार सत्य हुई ;-

दोहा :- समय-समय की बात है, समय बड़ा बलवान।
भीलन लूटी गोपियाँ-वही अर्जुन वही बाण ।।

हे अनिशा-उपरोक्त कुलीन अभिजात्य कौरव-पांडवों में जो महा-युद्ध हुआ है, उसका कारण भिन्न-२ वंश, कुल, परिवार, वर्ण-संकरता और जातीय भेद की भिन्नता का मात्र कारण है-इसीलिए तुम्हें वर्ण-संकर सन्तानों और समुजात जातियों-उपजातियों का भी किंचित-सा ज्ञान समझा रहा हूँ, जिससे तुम ही नहीं, अपितु अन्य कुमारियाँ, नव-युवतियाँ और प्रौढ़ा नारियाँ अपने व्यक्तिगत चारित्रिक गुण-अवगुणों का अवलोकन करती हुई, अपने शील-स्वभाव-संयम-नियम का पालन करती हुई, भगवद्भक्ति में अपनी आत्मा को लगाकर; सदैव सद्चरित्रता को अपनाने का उद्देश्य पूर्ण करेगी।

संतति (पुत्र-पुत्री) जनक ऋतु काल का अतिक्रमण करना धर्मवध जैसे महापाप के समान होता है, जो कि समय पर कुमारी कन्याओं का पाणि-ग्रहण संस्कार न करके निश्चित जो पारिवारिक लोग होते हैं, उनके ऊपर उसका पाप लगता है और जो कुमारी अपने इन्द्रिय-संयम द्वारा समय के अतिक्रमित होते हुए और समय का बाध करते हुए, अपने शील-धर्म का पालन करती है, वही सति है-वही साध्वी है और वही सुशीला है। इसीलिए उपयुक्त नेष्ट गान्धर्व-विवाह (**Love Marrige**) या "झाँड़ फूंक फेरों" की अपेक्षाकृत् श्रेष्ठ चार प्रकार के विवाहों में से प्राजापात्य-विवाह की भी अपेक्षा उत्तम देव-विवाह होता है, जिसके किये जाने पर कुल-परिवार की परम्परागत मर्यादा का पालन भी होता है

और विधि-पूर्वक विवाह कर दिये जाने के पश्चात्, केवल अपने पति के समागम से जो पुत्र उत्पन्न करती है, वही सगा या औरस (अंशज) पुत्र कहलाता हे। दूसरे प्रकार के पुत्रों की व्याख्या इस प्रकार वर्णित है :-

(१) क्षेत्रज्ञ पुत्र :- किसी के क्षेत्र (स्त्री) ने अपने निजि पति के अतिरिक्त किसी अन्य बीजी (पर पुरुष) द्वारा गर्भाधान संचयन करके जो पुत्र उत्पन्न किया हो, उसको 'क्षेत्रज्ञ' पुत्र कहा जाता है; जैसे महाराज शान्तनु के दोनों पुत्रों चित्रांगद और विचिज्ञवीर्य के क्षेत्रों अथबा रानियों से धृष्ठ राष्ट्र और पान्डु क्षेत्रज्ञ, प्रकार के पुत्र उत्पन्न हुए। अम्बा दासी से विदुर जी उत्पन्न हुए। कंस की उत्पत्ति द्रुमलिक राक्षस के द्वारा पवन रेखा से हुई।

(२) कानीन-पुत्र :- कुँवारी-कन्या में अपने बन्धु-बांधवों के घर रहते हुए ही किसी बीजी (जार पुरुष) द्वारा छिपे रूप से गर्भाधान धारण करते हुए पुत्र को जन्म दिया गया हो, वह "कानीन" कहा जाता है। जैसे कुन्ती से कर्ण, सत्यवती से 'व्यास', गौणाई से नामदेव और मरियम से ईसा-मसीह आदि महान् पौरुष वाले तथा कबीर जैसे महान् बौद्धिक पुत्र रत्न हुए हैं।

(३) सहोढ-पुत्र :- विवाह से पूर्व कुँवारी-कन्यावस्था में किसी जार पुरुष द्वारा गर्भ धारण करके विवाह के पश्चात् पति के गृह जाकर जो पुत्र उत्पन्न करें, वह सहोढ पुत्र कहलाता है। गान्धर्व विवाह द्वारा प्रणीता शकुन्तला के पुत्र भरत में अन्तर है या नहीं ?

(४) अपविन्द पुत्र :- माता-पिता द्वारा परित्यक्त किसी बालक का यदि अन्य पुरुष संस्कार करके लालन-पालन करें तो वह अपविन्द नामक पुत्र कहलाता है।

(५) गोलक :- पति के मर जाने पर विधवा का जायमान पुत्र गोलक पुत्र कहलाता है।

(६) कुण्ड :- नपुँसक एवं निकृष्ट कोटि के पति के जीवित रहते

हुए अन्य किसी पर पुरुष जारादि से जो माता पुत्र को उत्पन्न करे-वह कुण्ड प्रकार का पुत्र कहलाता है।

(७) पौनर्भव :- परित्यक्ता व विधवा हो जाने पर, यदि उसका द्वितीय विवाह (कराव) कर दिया जाये। उससे जायमान पुत्र को पौनर्भव-पुत्र कहते हैं!

(८) गूढज :- माता-पिता व बाँधवों के घर बिना नियोग के यदि किसी अन्य पुरुष के संयोग से पुत्र उत्पन्न हो जाय, तो वह 'गूढज' प्रकार का पुत्र कहलाता है!

(९) पुत्रीका-पुत्र :- अपनी पुत्री के पुत्र धैवते को उसका नान। पुत्र रूप में स्वीकार करता है। कन्या दान के समय यह कह कर कि इस कन्या-पुत्रिका से जो प्रथम पुत्र होगा, वह मेरा पुत्र होगा, ऐसे पुत्र को औरस पुत्र के समान अधिकार दूँगा, इस प्रकार वह पुत्रिका पुत्र कहलाता है।

(१०) क्रीत :- मूल्य देकर क्रिय किया हुआ पुत्र और।

(११) अज्ञात प्राप्त पुत्र :- जंगल आदि से प्राप्त या अपहरण या छलपूर्वक उठाया गया। पुत्र-दत्तक पुत्र की अपेक्षा पालने वाले का पुत्र ही कहलाता है।

अनिशा,, तुम भाग्यशाली हो कि तुम मेरे आश्रम पर, ''श्री गुरु रविदास जी'' के नाम मन्दिर की सेवा-आराधना कर रही हो। यह तुम्हारे पूर्व भाग्य का सुन्दर अवसर रहा है। तुम्हारी ओर सभी की दृष्टि स्नेहमयी रही है। आनन्दमय मन्दिर-आश्रम के प्रांगण में रहकर तुमने सुलभ सुख प्राप्त किया है। करुणा इसी बात के प्रति हैं कि तुम्हारा भावी जीवन भी सुखमय ही व्यतीत हो; क्योंकि तुम्हारा उपगता पुत्री के समान यहाँ लालन-पालन हुआ है।

जाति-उपजातियों के प्रति तुम्हें अन्तिम निर्देशन कर रहा हूँ; क्योंकि भावी कलि-काल में अन्तर्जातीया विवाहों आदि के संस्कारों

का कारण इनका विलीन हो जाना स्वाभाविक है तथा सामाजिक स्तर समता का क्षेत्र बन जायेगा।

पूर्वाचार्यों की स्मृतियों एवं शास्त्र-विचारों के अनुसार :-

(१) ब्राह्मण पुरुष और शूद्रा नारी से समुत्पन्न पुत्र 'पारशव' या 'निषाद' पुत्र होता है और उसी से सम्बन्धित उसकी जातियाँ-उपजातियाँ का व्युत्थान हुआ है।

(२) ब्राह्मण पुरुष की वैश्या नारी से उत्पन्न पुत्र क्रमश 'अम्बष्ठ' पुत्र और उससे संबंधित जातियाँ-उपजातियों का व्युत्थान हुआ है। इस प्रकार अन्य पुत्रों को भी समझिये। जैसे-क्षत्रिय की शूद्रा नारी से जायमान पुत्र 'उग्र' कहलाता हैं।

(३) क्षत्रिय की शूद्रा नारी से उत्पन्न पुत्र, उग्र कहलाता है।

(४) वैश्य की शूद्रा नारी से जायमान-शूद्र ही होता है'

(५) जब ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, उपनयन संस्कार की विधि का उलंघन करके सवर्णा (शूद्रा से नहीं) से विवाह करके पुत्र उत्पन्न करते हैं तो उनकी संज्ञा 'व्रात्य' होती थी।

ब्राह्मणों और क्षत्रियों की अन्तर्जातीया स्त्री अर्थात् ब्राह्मण की क्षत्रिया और क्षत्रिय की वैश्या स्त्री से उत्पन्न पुत्र सवर्ण और एकान्तर जातिया या ब्राह्मण की वैश्या और क्षत्रीय की शूद्रा स्त्री का पुत्र असवर्ण कहलाता है। यह अनुलोम अथवा उच्च वर्ण के पुरुष के साथ नीच वर्ण की स्त्री से उत्पन्न पुत्रों का जाति सम्बन्धी विवरण है।

अब प्रतिलोम जाति के सम्बन्ध में थोड़ा सा विवेचन कर रहा हूँ-देखिये,

(१) शूद्र की ब्राह्मणी स्त्री से जायमान पुत्र चाण्डाल (चाँडार, डोम आदि) और क्रमश: क्षत्रिया व वैश्या-स्त्रियों से क्रमश: क्षत्ता और अयोगव (अन्त्यज) नामक पुत्र उत्पन्न होता है।

२. शूद्र की क्षत्रिया या वैश्या स्त्रियों से क्रमश: जायमान पुत्र 'क्षत्ता' और 'अयोगव' कहलाते हैं। 'अयोगव' को बहिष्कृत या अंत्यज भी कहा जाता है।

३. वैश्य की क्षत्रिया नारी से उत्पन्न पुत्र 'मागध', चारण और भाट और उनसे, उनकी जातियों का विकास हुआ है तथा ब्राह्मणी नारी से 'वैदेहक' नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई है। इसी नाम के आधार पर, उससे सम्बंधित उसकी जातियों-उपजातियों का सृजन हुआ है।

४. क्षत्रिय की ब्राह्मणी स्त्री से 'सूत' नामक पुत्र उत्पन्न होता है। 'मागध' की भाँति पुराणोक्त 'सूत जी' को 'सूत' या 'सूत जाति' से अधिक श्रे:य दिया गया है।

५. पूर्वापर प्रकार के पुत्रों में से 'उग्र' द्वारा ब्राह्मणी-शूद्रा की कन्या द्वारा जायमान पुत्री 'नैषादी' से उत्पन्न पुत्र 'कुक्कुटक' कहलाता है और ऐसे आचरण-नियम के विपरीत 'निषाद' से 'उग्र' की कन्या द्वारा उत्पन्न पुत्र का नाम 'पुल्कस' या 'पुक्कस' होता है। क्षत्रिय की शूद्रा-स्त्री से जायमान पुत्र 'उग्र' कहलाता है–ऐसा जानना चाहिए।

६. ब्राह्मण की क्षत्रिया स्त्री से संभव पुत्र 'अम्बष्ठ' और शूद्रा नारी से जायमान पुत्र 'निषाद' या 'पारशव' कहलाता है। ये दोनों प्रकार के पुत्र एकान्तर जातीय या असवर्ण-जातीय कहलाते हैं।

'कुट बाँड़ला' जाति के विषय में भी ऐसी ही विचारणाएँ चली आ रही हैं और यह जाति क्षत्रिय-वीर जातियों के समान एकान्तर जाति अथवा असवर्ण जाति कहलाती है। :कसकुट', चमारों की वह जाति रही है जो चमड़ा रंगाई के लिए, कीकर-पीपल, ढाक और पलास आदि की छालों को कूटकर चमड़े की रँगाई करती थी। इसी भाँति 'कुट बाँढ़ला' जाति निम्न श्रे:णी की जाति कही गई है; जो कि घास-पात आदि की छानें बनाकर; उनमें रहा करती थी। इस जाति की विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो पाई है।

७. शूद्र-वर्णीय जातियों के लिए स्मृतिकारों ने एक प्रकार से व्युत्पत्ति इस प्रकार की है :- वैश्य की शूद्रा नारी से जायमान संतति 'शूद्र' ही कहलाती है और उसकी जाति नहीं बदलती। इसका अभिप्राय: यह हुआ कि 'शूद्र-वर्ण' एक जाति विशेष थी।

भारतीय समाज ऊंची और नीची जातियों का अलगाव और विलगाव करने का समाकीर्ण मनोभाविक पूर्व प्रचलित रीति-नीति का आवेग मात्र है। किसी भी जाति वाले लोग अपनी ही जाति में अपने बालक-वालिकाओं के विवाह-शादियां करते हैं।

उपोद्घात और विश्वासघात

आज दिनांक ३० जनवरी सन् १९९३ ई० को, इस पुस्तक का प्रकाशन कार्य समाप्त किया जा रहा है और कल तक इसका इतना ही आकार-प्रकार वाला प्रारूप बन्धन कर दिया जायेगा; क्योंकि निर्धारित समयानुसार इसको प्रस्तुत कर दिया जाय। अन्य पत्रों के साथ, आज ही निम्नलिखित निमंत्रण-पत्र चण्डीगढ़ से प्राप्त हुआ है। इसका विवरण भी अन्तिम समय प्रकाशनार्थ तुरन्त भेजा जा रहा है।

Ch. JAGJIT SINGH, Housing and Urban Development
Minister Punjab, President; Sri Guru Ravidas foundation.
Cordially invites your gracious presence at the National Level
SEMINAR
On the life, Bani and teachings of Sh. Guru Ravidas ji
on Tuesday, 2nd February, 1993 at 10.30 a.m.
at Tagore Theatre, Sector 18—Chandigarh.

Delegates from India and abroad are participating in the seminar

Hon'ble S. Beant Singh:—Chief Minister Panjab, has very graciously acceded to our request to preside over the seminar.

Hon'ble Km. Selja:—Union Deputy Minister for Education and Culture will be the guest of honour.

R.S.V.P.
Ph. 535809

Dr. D.P. Singhal, M.A. Ph.D.
Chairman, Sri Guru Ravidas Chair
Punjab University, Chandigarh

Registration of delegates 9.30 to 10.30 a.m.
Lunch 1.30 a.m. & Tea 5 p.m.

To, Sant Sri Jagbir Singh ji, 2/50 East Gokalpur Delhi-94

पूर्व प्रसङ्ग सहित, इस 'नारी मंगल' नामक पुस्तिका का निबन्धन दो वर्षों पूर्व पच्चीस पटलों सहित कर दिया गया था। जीवन की किन्हीं विशेष कंटकाकीर्ण परिस्थितियों एवं धनाभाव और समयाभाव के कारण, इस पुस्तिका का संवारा हुआ प्रारूप प्रकाशित कराकर प्रस्तुत भी न कराया जा सका। एकदम इसको प्रकाशित कराने के लिए, एक जागरूकता हृदय में उत्पन्न हो गई; क्योंकि अकस्मात् ही 'दैनिक जागरण मेरठ, दिनांक २९ नवम्बर १९९२ वाला समाचार-पत्र मुझको मेरे अमुक शिष्य द्वारा प्राप्त हुआ। उसमें, उत्तर प्रदेश, संस्कृत अकादमी, संस्कृत भवनम्, नया हैदराबाद, लखनऊ-२२६००७, के निदेशक 'श्री मधुकर द्विवेदी' महोदय द्वारा पुरस्कार के हेतु-पुस्तक-रचनाओं की, दिनांक ३१ दिसम्बर १९९२ तक, पुरस्कार योजनान्तर्गत मांग की गई थी।

'नारी मंगल' पुस्तक को प्रकाशित कराकर यथोचित समय पर, प्रस्तुत किये जाने के हेतु, हमने एक पत्र निदेशक, 'श्री मधुकर द्विवेदी जी' के नाम

लिखकर, अभ्यर्थना करते हुए प्रेषित किया था। तदर्थ उसका प्रत्युत्तर पत्रांक ४१३०/सं० अ०-६२ दिनांक १६-१२-६२ ई० हमको प्राप्त हुआ। निदेशक महोदय ने हमको इस पुस्तक को नवीन रूप से प्रकाशित कराकर दिनांक ३१ जनवरी सन् १९६३ ई० तक भेजने का निर्देशन दिया। अस्तु, इस कृति को दो नवीन प्रकाशकों के आग्रह करने पर, २६ नवम्बर १९६२ ई० को ही प्रकाशनार्थ दे दी गई थी।

नये प्रकाशकों ने इस पुस्तक को यथोचित समय और उचित ढंग से मुद्रित करने में तल्लीनता ही नहीं बरती और लगे अपनी कलि-युगीन पापपूर्ण-मनोवृत्तियों को अपनाने। ज्यों-त्यों करके, उनको अग्रिम धन-राशि और पत्रों के बंडल प्रदान कर दिये गये थे। धर्म और अधर्म का द्वन्द्व, इस अर्थ को प्रकट करने लगा कि विषय वर्णित लेख्य सामग्री का ही लोप होने लगा। केवल एकादश पटलों की विषय-सामग्री ही विकिरण-अवस्था में अर्थात् 'कही का विषय कहीं और कहीं का विषय कहीं' प्रकाशित होने लगा। प्रस्तावना और सद्‌भावना, जो कि वर्तमान समय पर लेखनीनद्ध करके संजोई गई थीं; उसको प्रथम पटल में और प्रथम पटल का विषय अन्यत्र किसी और जगह प्रकाशित कर दिया गया। बड़े असमंजस की बातें हुईं; अस्तु अधिक कहने-सुनने पर, एक प्रकाशक से चार और दूसरे प्रकाशक से छ: पटलों की अशोभनीय प्रकाशित प्राप्ति कुछैक सज्जनों द्वारा 'श्री रविदास-मंदिर' पर लाकर प्रस्तुत की गई। हृदय में क्षोभ करने से होता ही क्या ? केवल पश्चाताप के अतिरिक्त और किया ही क्या जा सकता है ?

भारतवर्ष की सभ्यता और संस्कृति में 'मद्य-मांस' के पान-खान करने को निषिद्ध माना गया है। मद्य-भक्षण और सुरा-पान करके, धार्मिक कृत्कार्यों को करने वाले सफल नहीं हुआ करते हैं। आज के युग में ऐसी प्रवृत्ति वाले किन-किन लोगों को रोका जाय–कोई मानता ही नहीं है ? धार्मिक उपदेश कहां तक सुनायें —कोई तदर्थ का तात्पर्य समझता ही नहीं है ? 'घट के पट' पर कलिमष के टीके और भी कलुषित होते जा रहे हैं तथा पाप-वृत्ति ने विजय पाना प्रारंभ कर रखा है। अन्ततः हम लोग उन लोगों के प्रति अपनी हार्दिक शुभैच्छाएँ अभिव्यक्त करते हैं; जिन्होंने इस पुस्तक को प्रकाशित होते समय छल-छिद्रान्वेषण किया है। हानि-लाभ, यश-अपयश और मरण-जीवन विधिना के हाथ है; मानव मात्र के हाथ नहीं होता। हम तो प्रकाशकों को, अपनी ओर से यही बधाई दे सकते हैं कि वे अपने छल-छिद्र, कपट-दंभ और मिथ्या भावों से पूर्ण विचारों इत्यादि का परित्याग करते हुए, अपने कार्यों में सदैव सच्चाई और ईमानदारी से सफलता प्राप्त करते रहें—सन्त श्री जगबीर

ॐ ररंकारम्

नारी मंगल की विषयानुक्रमणिका

टिप्पणी :—कुछ प्रकाशकों की आनाकानी और कुछैक विशेष कारणों से इस पुस्तक का प्रकाशन कार्य बन्द कराया गया है । परिमार्जित, परिवर्द्धित एवं पच्चीस पटलों से युक्त दूसरा संस्करण, अविलम्ब तैयार किया जा रहा है । पाठकगण, दूसरे नये संस्करण को अवश्य पढ़ने का साहस करें ।

दिनांक ३०.१.१९९३ —सन्त श्री जगबीर

ओ३म ररंकारम्

नारी मंगल

प्रथम पटल

नारी:- सुखारी-दु:खारी

मंगला चरण

गुरु-स्तुति:- गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु र्गुरुर्देवो महेश्वर: ।
गुरुर्संरक्षात् पर ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नम: ॥ १ ॥

गुरु-तिलक:- अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन सचराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवै नम: ॥ २ ॥

निजि-नाम:- मूल मंत्रं गुरो र्वाक्यं; पूजामूलं गुरो: पदम् ।
ध्यान मूलं गुरुर्मूर्ति; मोक्षमूलं गुरुकृपा कुरु ॥ ३ ॥

हिन्दी रूपान्तरण:- हमें ऐसी मनो भावना करके सर्व प्रथम अपने सद्‌गुरु को प्रणाम करना चाहिए कि गुरु ही आदि देव ब्रह्मा का स्वरूप है; गुरु ही आदि देव विष्णु का स्वरूप है तथा गुरु ही आदि महादेव

शिव का स्वरूप है। किं बहुना सदगुरु ही एक मात्र परम ब्रह्म का साक्षात् रूप है ।१।

अखिल खिले सकल ब्राह्मण्ड में; जो सत्त्व-सत्ता रूप से जड़ और चेतन में परिव्याप्त हो रहा है: उस अनुपम-अद्वितीय पर ब्रह्म की प्रतीति तथा उसके अगम लोक-निवास की प्रतीति कराने वाले सद्गुरु देव को बार बार प्रणाम हो । २ ॥

सद्गुरु द्वारा प्रदत्त निजि-नाम अथवा नाम दान, वेदादि के मूलमंत्रों के समान "महा मंत्र या महावाक्य' है। पूजादि करने कराने का मूल-सार अपने सद्गुरु के युगल-चरणों की सेवा में रत रह कर प्रभु की वन्दना करना है। धर्म का वास्तविक मूल सद्गुरु की सेवा में छिपा हुआ सद्कर्म है तथा पुण्य-कर्मों के शुभ परिणाम "मोक्ष-प्राप्ति' का मूल वीज, सद्गुरु की विशेष कृर्पा पर आधारित है ॥ ३ ॥

प्राचीन धार्मिक प्रथा के अनुसार, सर्व प्रथम, मनुष्य के लिए यह अभिप्रेरित किया गया कि, अपने सद्गुरु की नित्य-नियम से पूजा करनी चाहिऐ। यदि सदगुरु अपने सन्निकट नहीं है तो उसके चरण-खड़ाऊओं का ही पूजन करना चाहिए। [भरत ने अपने ज्येष्ठ भाई राम के चरण-खड़ाऊ ओं की पूजा की थी। किसी श्वेत या भगवे वस्त्र पर सद्गुरु के चरण चिन्ह बनाकर अथवा जब सद्गुरु का वरण करें, तब ही, उसके युगल-चरण को उपरोक्त रंगों के वसनो पर धरवा कर-उन चरण चिन्हों का पूजन करें। सद्गुरु के चरण-कमलों का चरणामृत, स्वच्छ जल से धोकर करें अथवा चरण-रज की गोली बनाकर रखले और उसी को पानी में संमिश्रण करके, नित्य-नैमित्तिक कर्म करते हुए—चरणोदक ले लिया करें।

यदि गुरुजी का आगमन अपने घर पर हो जाये तो उनके प्रति मंगलाचरण का गान करें और पति-पत्नी दोनों ही नित्य-नैमित्तिक कृत्य कार्यों से निवृत्त होकर, उसके प्रत्यागमन के समय साष्टांग प्रणाम करते हुए वे दोनों ही ऐसा कहें :-

उपचारैः समस्तैस्तु यद्यन्या पूजनं कृतम् ।
तत्सर्वं पूर्णतां अपराधं क्षमस्व मे गुरु ॥

अभ्यर्चना

दोहावली:- अक्षर-क्षर दो विधि कहि, एक अज दस अवतार।
अगम-निगम न जान सकैं, शास्त्र कियो विचार ॥ १ ॥
ऋषि मुनि तषलीन कथै; वहु विधि बहु प्रकार।
ज्ञानी ध्यानी विज्ञ जन; सन्त जन कह पुकार ॥ २ ॥
जीव निकासा नीर से, जीवन दियो अभेद।
माया लागी सभी को, नहीं होवै उच्छेद ॥ ३ ॥
अजरामर अतीत विभो, निरालम्बी जगदीश।
सच्चे सदगुरु आप को, सदा निवाऊँ शीश ॥ ४ ॥

मंत्र मूलं या श्रुति-मूलं गुरु के महा वाक्य को जिसे सर्वप्रथम अपने शिष्य/ शिष्या को प्रदत्त किया जाता है, उसे निजिनामं कहा जाता है। शूद्रों की भाँति नारियों को अतीत-काल के साधु-सन्तों और ऋषि-मुनियों ने गुरू के महावाक्यों को ग्रहण करने का अधिकार ही नहीं अपनाने दिया। सद् ग्रन्थों के पठन-पाठन का निर्देशन भी उनके प्रति निषेधात्मक रहा है। नारियों के हितार्थ निजि-नाम उद्धृत किया जा रहा है, जिसको वे भजन-ध्यान में स्मरण कर सकती हैं तथा अपनी प्रार्थना प्रभु तक पहुँचा सकती है। यथा—

जों निजि नाम-श्री कृष्ण जी अनादि अक्षरातीत।
सो तो जग प्रकट भए, सव विधि वतन सहीत ॥

श्री श्यामा जी बरसत है, सदा सत सुख के दातार।
विनती एक जो वल्लभा, मो अंगना के आधार ॥
बाणी तो मेरे पीव की, न्यारी सो यह संसार।
निराधार के पार तैं, तिन पार तैं भी पार ॥
अंग उत्कंठा ऊपजैं, मेरे करुणा यह बिचार।

यह सत बाणी मंथ कै, लेऊँ जो इसका सार ।।
इस सार में कई सत सुख लों, निर्णय करो निराधार ।।

यह सुख देऊँ ब्रह्म-सृष्टि को, जो मैं अंगना नार ।
जब यह सुख अंग में आवसी सब छुट जाए विकार ।।
मेरे आयो आनन्द अखंड घर का मेरे अक्षरातीत भर्तार ।।

नर-नारियों प्राचीन में सद्गुरु की शिक्षाओं और उसकी आत्मिक प्रतिभाओं की अधिक महत्ता थी । ऋषियों-महर्षियों के आश्रमों पर ही रहकर प्रत्येक गृहस्थाश्रम के बालक/बालिकाएँ शिक्षा ग्रहण किया करते थे । उनमें राजकुमारों से लेकर निर्धन झौंपड़ी वाले कंगालों के निर्धन बच्चे भी विद्याध्ययन किया करते थे। पूर्णरूपेण पच्चीस/अट्ठारह वर्ष का ब्रह्मचर्य-ब्रह्मचार्या का पालन करके, वे अपने घर लौटते थे । शनैः शनैः आचरणों में शिथिलता आने के कारणों को जान कर नारी-वर्ग के लिए नियमों को कठोर कर दिया गया ।

जिस नाम पर आधारित 'भारत' वर्ष या खण्ड का नाम निर्धारित हुआ है, उस भरत की माता शकुन्तला कण्व ऋषि के आश्रम में रहकर यौवनावस्था को प्राप्त हुई और गान्धर्व-विवाह द्वारा राजा दुष्यन्त की प्रिया हुई । सति सीता महर्षि बाल्मीकि के आश्रम पर परित्यक्तावस्था में रहकर, सति सीता ने लव-कुश नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया । उनके चरित्र कितने आदर्शवान् हैं, जो आजकल की नारियों के लिए पथ प्रदर्शन का कार्य करते हैं । योगारूढ़ बिदूषी गार्गी, विदूषी अपाला पतिव्रता सावित्री और दमयन्ती ने अपार कष्टों को पाते हुए भी, अपने नारी-धर्म को निष्कलंक रूप से निभाया है और वे सदैव आदर की पात्रा हैं । उनके चरित्रों का नारियाँ अनुसरण करें ।

नारियों ! अतीत काल में नारियाँ अपनी शालीनता के कारण सतियाँ हो जाया करती थीं और कुछ साध्वी बालिकाएँ भूमि में समा जाया करती थी । विवाह-शादियाँ करते हुए, हिन्दू-धर्म में सती और गौत्र पहले पूछा जाता था । यह प्रथा तो मानने वालों के लिए आज भी वैसी ही बनी हुई है । ऐसी आदर्शवान चारित्रिक गुणों की प्रतीक-पद्धति है ।

आज के युग में साधु-साध्वी कम रह गये हैं। अधिकांशत: उनमें चारित्रिक गुणों से विहीन अपनी जीविका उपार्जन करने में दक्ष दंभकारी, स्वार्थ में रत, कामुक और व्यसनी-ढोंगी मिलेंगे। आचरणहीन साधु-सन्त कैसा? विद्या-विहिन उपदेशक कैसा? शालीनता बिना शिक्षक/शिक्षिकाएँ कैसे और भाव बिना मित्र कैसे? यह जानना-मानना आपका अपना कर्म-कर्तव्य है। आपके मन में फुरना होगी तो आप जानने-मानने का प्रयास अवश्य करोगे।

पर हाँ इस लोकोक्ति के अनुसार कि "बीति ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि ले" अर्थात् हमको वर्तमान और भावी काल पर विचार करना अच्छा होगा। कुछ कारणों से आजकल गुरु या शिक्षक पद स्वार्थपरत और गौण हो रहा है। गुरु दीक्षा और शिष्य-शिष्या-शिक्षा एक मात्र पढ़-लिख कर प्रगति करने की प्रथा रह गयी है। शिक्षा में न दीक्षा, धर्मोपदेश न आचरण-शीलता तथा नियतता न प्रवृत्ता आदि स्वाभाविक गुण रह पाये हैं और न गुरु मान के लिए श्रद्धा रही है। किसी न किसी प्रकार धनावृत्ति हो, ऐसी प्रवृत्ति गुरु-शिक्षकों में मिलनी स्वाभाविक सी बात है और धार्मिक क्षेत्र में केवल प्रसाद बंटवाकर शिष्य मूँड लिया गया है, ऐसा सदाचरण रह गया है। पुरातन प्रतिमानों को खोकर नवीन उपमानों की जो थाथी आजकल बोल रही है, वही आमूल-चूल भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का विनाश भी कर रही है।

धार्मिक क्षेत्र में भक्ति की शक्ति को श्रेय दिया जाता ही है। गुरुजनों में न तो आजकल शिष्य-शिष्याओं को योगाचरण एवं साधना प्रवृत्ति सुदृढ़ कराने की क्षमता रही और न शिष्य-शिष्याओं में अनुशासनात्मक प्रवृत्ति या योग दर्शन के प्रणेता महर्षि पतञ्जलि के प्रथम सूत्र 'अथ योगानुशासनः' के अनुसार मंगलमय-साधना करने की अभिरुचि रही है। क्योंकि गुरुजनों को श्रेय तभी है, जब तक कि वे अपने शिष्य-शिष्याओं को ऐसा न सिखाये कि :-

अथ मंगलमय योग कर, करहु वृत्ति निरोध।
अनुशासन से ज्ञानमय, शिक्षा प्रद चित बोध॥

भक्ति की शक्ति के बिना भगवद्-दर्शन होना दुस्साध्य है। ज्ञान-मार्ग की भक्ति करना, एक पैनी धार वाले तेज खाण्डे पर चलने के समान है, जिस पर योगारूढ़ साधुजन ही चल सकता है-नारियाँ और कापुरुष नहीं। इस विषय में 'शंकर' जी कहते हैं :-

साधु होना कठिन है, शंकर कहै पुकार।
अगम पंथ का चालना, ज्यों खाण्डे की धार॥

जिस साधु-सन्त या शिक्षक में काम-क्रोध-मद-लोभ और मोह भरा हुआ हो, जो पाप-पाखंड-प्रपंच की रचना करता हो, जो शास्त्र-संमति, सदाचरण और ईश-भक्ति में दक्ष न हो, जो अपने कृत् कार्यों तथा अनुभव पर आशंका रहती हो और जो दयालु, परोपकारी, परमार्थी और सिद्ध होते हुए भी दुराचरण का परित्याग न करता हो, उसे गुरु रूप में नारियों को ही नहीं अपितु नरों को भी वरण नहीं करना चाहिए। पानी पीजै छान कर। गुरु कीजै जान कर॥ इस उक्ति का तादात्म्यार्थ तभी सार्थक होगा, जबकि किसी साधु-सन्त या शिक्षा-गुरु को देखकर सहज ही तुम्हारे हृदय में ज्ञान की प्रवृत्ति न उमड़ आये। इन्द्रियां निवल, विमल, रसभोगी, संयमी साधु-संत नहीं होता, इसी अनुभव को प्राप्त करके गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि :-

सवैया :- मुँड मुडाय रखाय जटा सिर, राख लगाय बने ब्रह्मचारी।
बैठे रहें पट दे मठ भीतर, साध कै मौन लगाय कै तारी॥
धर्म अधर्म के घूँट पिये, ममता मद लोभ दया विसारी।
ऐसे भये तो कहातुलसी जो पै, आसन मार के आस न मारी॥

सज्जन नर नारियों! ऐसे साधुओं से बचना चाहिए, जिससे आप का मानव-धर्म कुंठित न हो सके। धर्म जाने पर मानव का पतन होता है, इसीलिए अपना धर्म रखिये :-

दोहावली :- जड़ चेतन जे वस्तुयें; तिनका धर्म आधार।
जो हठ राखे धर्म को; तेहि राखे करतार॥ १॥

धर्म प्राण जो नर बने; ते नर ईश्वर पूत।
अधम कुचाली पातकी, ते जीते ही भूत ॥ २ ॥

जड़-चेतन के मिलन में चेतन की अधिक महत्ता है। चेतन तो चेतन ही है चाहे वह नर के रूप में अथवा मादा के रूप में साक्षात हमारे सम्मुख ही क्यों न खड़ा हो। आकृति विशेष में गुण-अवगुण की थाह का पता तब लगता है, जबकि उसके गुण-रूप-स्वभाव से हम पूर्णतः परिचित हो जाते हैं। चौरासी लाख योनियों की परिगणना इस प्रकार की गई है; जिनमें—

दोहा ;- बीस थीर नव वारि चर, रौद्र कीट दस पक्ष।
तीस चतुष्पद चारि नर, यह चौरासी लक्ष ॥

चार लाख मानव की योनियाँ हैं और जिनमें अढाई लाख नर तथा डेढ़ लाख नारी योनियां गिनी गई हैं। बीस लाख स्थिर-वृक्षादि की, नौ लाख जलचरों की, ग्यारह लाख कीट-पतंगों की, दस लाख पक्षियों की और तीस लाख चतुष्पदों की परिकल्पित की गई योनियां हैं। इन सब में मानव योनि ही श्रेःष्ठ है, जिसमें नर का जितना धर्म उत्तम है, उतना ही नारी का धर्म भी श्रेःष्ठ है।

अन्तर्जातीय-विवाह-शादियों में कोई अवरोध नहीं होना चाहिए। जात्यान्तर भेद तो प्रकृति जन्य है, जो उसी में लीन रहता है तथा पशु जाति, कीट-पतंग जाति की भाति मानव भी एक जाति का है; जिसमें मानव को मानव ही समझकर; उसकी मानव जाति का ही हमें बोध रखना चाहिए और मानव-धर्म की श्रेष्ठता इसी बात में है। योग दर्शन के 'कैवल्यपाद' में महर्षि पतंजलि ने जाति या जात्यान्तर के प्रति ऐसा अभिव्यक्त किया है :-

जन्मौषधि मंत्र तपः समाधिजाः सिद्धयः। सूत्र १

जात्यान्तर परिणामः प्रकृत्यापूरात्। सूत्र २

निमित्तम प्रयोजकं प्रकृतीनां वर्णभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्। सूत्र ३

प्रथमार्थ—जन्म, औषधि, मंत्र, तप और समाधि के यत्न पूर्वक यथार्थ साधन करने से सकल प्रकार की सद्योजात सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं। नारियों के लिए सभी सिद्धि-योग प्रसाधन मात्र हैं।

समालोचन विस्तार—मनुष्य अपने जन्म-धारण करने के समय से लेकर शुभ कर्मों के करने के कारण देवस्वरूप होकर समस्त सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। उचित औषधि सेवन करने से उसकी काया-व्याधि मिट जाती है और उसको ऐसा करने पर, उसका कायाकल्प भी हो जाता है। मंत्र जपने से गगन में विचरण करने तक की शक्ति मनुष्य प्राप्त कर लेता है और पुनः सिद्धियों का प्रकाश उसके जीवन को अमर कर देता है तपस्या के प्रभाव से अणिमा सिद्धि से लेकर कैवल्य पद तक सभी सिद्धियां उसको सेविका के समान प्राप्त हो जाती हैं। समाधि से सर्व प्रकार के मनोरथों के पूर्ण हो जाने की सिद्धि हो जाती है। उपरोक्त परिणामों के पलट जाने के कारण. भावी जन्म में अन्य जाति जात्यान्तर होता है।

द्वितीयार्थ—परिणाम के पलटने पर अथवा प्रकृति के आधार पर प्रकृति के पूर्ण हो जाने के पश्चात्, जाति बदलती है अथवा जात्यान्तर होता है, जिसे योनि दर योनि भ्रमना भी कहते हैं।

समालोचन विस्तार—शरीर की प्रकृति जलादि पंचक महाभूत हैं तथा अस्मिता (अहंकार) आदि मन इन्द्रियां की सहायक प्रकृति हैं। जब ये सभी कारण से कार्य में परिणित हो जाती हैं, तब प्रकृति की पूर्णता हो जाती है और बिना धर्माधर्म-कर्माकर्म किये; जाति परिवर्तन या जात्यान्तर परिणाम नहीं होता, अपितु वह उनके करने के कारण पाप-पुण्य के भोगने के लिए होता है। देव, मनुष्य, पशु-पक्षी दानवादि की जाति को जीवधारी अपने कर्मानुसार ही प्राप्त करता है। जाति भेद से जैसी प्रकृति होती है, उसका भी वर्णन किया जा रहा है।

तृतीयार्थ—धर्म प्रकृति का प्रायोजक नहीं है अपितु निमित्त कारण मात्र है। जैसे कृषक अपने क्षेत्र में वर्षादि से अधिक जल भर जाने पर उसकी बाड़-खाई हटाकर, बाहर निकाल देता है तथा फसल की रक्षा

करता है, ऐसे ही कारण के बिना कार्य की सिद्धि प्राप्त नहीं होती है।

समालोचन विस्तार—धर्म आदि प्रकृति के निमित्त कारण होते हुए भी उसके प्रवर्तक नहीं होते। निमित्त कारणों से धर्माधर्मों के आवरणों का निवारण होता है। दृष्टान्त के रूप में, जैसे कोई कृषक अपने खेत में जल भर जाने पर, उसको रोकने वाली नदी-नाला आदि को बाँध लगाकर रोकने का प्रयास करता है और ऐसा किया जाने पर जल अन्य क्षेत्र को वह जाता है। इसी भाँति धर्म जो त्रिगद योनियों का आवरण मात्र है, उसको अधर्म अपनी शक्ति से निवारण कर देता है, तब प्रकृति अपने आप ही कीट-पतंगादि त्रियग्योनियों के परिणाम को परिवर्तित कर देती है। इसके प्रतिकूल धर्म भी अपनी प्रवृत्ति शक्ति के अनुसार उत्तम स्वभाव या जाति वाले देवादिकों के लिए जो प्रतिबन्धक आवरण मात्र हैं, उसका निवारण कर देना है। इस प्रकार प्रकृति आप ही आप देव, दानव, मानव जाति आदि में परिणित हो जाती है। ऐसी ही धर्म-अधर्म की प्रकृति होती है। धर्म किये से लाभ हैं और अधर्म किये से हानि है। अतएव मनुष्यों की अपेक्षा नारियों तुमको दार्शनिक अभिव्यक्तियाँ अपनानी अवश्य होगी, क्योंकि तुम नर सम्बलों से क्षीण नहीं हो। तुम्हें शुभ-धर्म-कर्म करने में म्लानता-ग्लानता नहीं होनी चाहिए।

रूपसि-भारतीय नारियों तुम विदेश की नारियों से पीछे मत रहो। जिस प्रकार पुरुष प्रकृति के लिए प्रेरक हैं, उसी प्रकार तुम्हारे द्वारा वरण किया हुआ पुरुष भी तुम्हारे लिए प्रेरक है। पुरुषों के धर्म और नारियों के धर्म में केवल परिणाम के निमित्त कारण का अन्तर-भेद है। पर पुरुष के प्रयोजक अर्थात् दुष्कर्म तुम्हारे धर्म आवरण को नाश करने वाले केवल तुम्हारे लिए ही अधर्म है। तुम भी परपुरुषों के धर्म-आवरणों के प्रतिबन्धकों में हस्तक्षेप मत करो। उनके द्वारा किये गये अपकर्म उन्हीं के व्यक्तित्व पर छोड़े रखो। ऐसी प्रवृत्ति ही तुम्हारे धर्म-शील-स्वभाव और सदाचरण का कारण वनी रहेगी।

मेनका की पुत्री शकुन्तला कण्व ऋषि के आश्रम पर पालित हुई और वहीं रह कर वरयोग्या नव-यौवना हुई। गान्धर्व-विवाह के पश्चात् महर्षि-मारकण्डेय के आश्रम में निवसिता शकुन्तला ने 'भरत' को जन्म दिया। श्री रामचन्द्र द्वारा परित्यक्ता गर्भवती जानकी सीता जी महर्षि-बाल्मीकि के आश्रम पर रही और वहीं उसने दो जुडवाँ पुत्रों-लव और कुश को जन्म दिया। अतीत काल की अन्य बहुत सी नारियों के

ऐसे ही उदाहरण पुराणों के पृष्ठों में अंकित हैं।

कपिल मुनि के सांख्य-दर्शन के सूत्र के अनुसार नारियों के स्वाभाविक धर्म काम-वासनाओं की तृप्ति के हेतु विवाह-संस्कार एक प्रकार का बंधन कहलाता है। क्रिया से शून्य जड़ प्रकृति में चेतन जैसी गति का होना असंभव होता है और जीव का (नर और नारी) दोनों पक्षों में (नर और मादा की कामेच्छा की पूर्ति) परिणाम और परिणामी होना कुछ दोषपूर्णं नहीं है।

सांख्य दर्शन में कहा गया है :- न गति विशेषात् ॥ प्रथमोऽध्याय सूत्र ४८ अर्थात् चेतन नर प्राणी में उसके जीवन-यापन काल पर्यन्त तीन प्रकार की गतियाँ हुआ करती हैं-ज्ञान, गमन और प्राप्ति। इन तीनों गतियों को बन्धन का कारण नहीं माना जाता है। किसी भी अज्ञान विशेष के कारण बन्धन होता है। ज्ञान प्रातिभासिक, व्यवहारिक और पारमार्थिक तीन प्रकार का होता हैं; जिस का अविवेकपूर्ण उल्लंघन करने पर बन्धन होता है। प्रातिभासिक सत्ता का ज्ञान इन्द्रिय और संस्कारों के दोषों के कारण होता है; परन्तु नर या नारी के आत्मा में न इन्द्रिय दोष होता है और न संस्कार दोष होता हैं। दोष-अवदोष तो शरीरियों के स्वयं अर्जित होते हैं। व्यवहारिक ज्ञान बद्धता का प्रतीक मात्र होता है, जिसके कारण नारी, नर के साथ अपना बन्धन बाँध दिये जाने पर सुरुचिपूर्वक, उसको निभातीं है।

नारियाँ पारमार्थिक ज्ञान प्राप्त करके अपने आप को बन्धन मुक्त कर सकती है; क्योंकि पारमार्थिक ज्ञान ही मुक्ति का हेतु कहलाता है। भक्ति आदि करने से जो ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त होता हैं. उससे भी नारियाँ भवसागर को पार करने में सामर्थ्यशालीनी हो सकती है। दूसरे प्रकार की गति 'गमन' शरीर और इन्द्रियों में होती है; जिसका परिणाम यह होता है कि यह गति तो जीवधारियो में स्वाभाविक उत्पन्न हो जाया करती है; जिसकी पूर्ति का उपाय-संस्कार का किया जाना है। तीसरी 'प्राप्ति गति' दुःख और सुख दोनो का कारण बन जाती है। सुशीला कन्या-कँवारी को यदि सुचरित्र-सुन्दर सा वर प्राप्त न हो सके तो-भविष्य में उसके गृहस्थ-व्यवहार में बाधाएँ आ सकती हैं-जिनका निदान होना दुःसाध्य हो जाया करता है।

द्वितीय पटल

प्रार्थनाएँ एवं नारियाँ

अच्छा आओ! हम सब मिलकर; सर्व प्रथम उस परम पिता परमेश्वर की प्रार्थना करें; जिसने हमको इस पार्थिव मानव-शरीर को अर्पित करके उसके अभ्यन्तर, हमारी आत्मा को एक होते हुए भी अनेक रूपों में समाविष्ट किया है—और वही अपने अंशी की अभ्यर्थना न कर सके, उस आत्मा को परमात्मा के नाम पर धिक्कार है।

अथर्ववेद की एक ऋचा हमको ऐसा मार्ग-प्रदर्शन करती है; जिस पर आरूढ़ होकर हम, यह कहें कि आओ! हम सब सम्मिलित होकर ऐसी प्रार्थना करें; जिससे विश्वभर के सभी नर प्राणियों में पारस्परिक सुमति का विकास होकर सद् भावना का प्रोद्भास हो सके। यथा ऋचा जैसा बोलती है :-

तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः॥ अथर्व० ३-३०-४

यदि एकाकी मानव प्रार्थना करते हुए यह कहे कि हे भगवन्! आप मुझ पर ऐसी कृपा कीजिऐ, जिससे—मैं मनुष्य मात्र के प्रति; जिनको मैं. चाहे जानता हूँ और चाहे नहीं भी जानता हूँ, उनके प्रति सद्भावना रख सकूँ। यजुर्वेद की ऋचा ऐसा कहती है—

यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि। यजु० १७·१०

'उपसर्प मातरं भूमिम्' अर्थात् अपनी मातृ-भूमि की रक्षा करते हुए, हम सब मिलकर ऐसी भी प्रार्थना करें कि—"हम सब आपस में पारस्परिक शत्रुता न रखें; क्योंकि शत्रुता रखने से समाज का विकसित रूप अवकुंठित हो जाता है। यजुर्वेद की एक ऋचा ऐसे कहती है—

स ऋते शान्तस्य सखाय देवा: ।। यजु० ४-१३-११

भगवान् से ऐसी भी प्रार्थना करनी चाहिए कि हम सब विद्वान बनें, क्योंकिविद्वान् ही सम्यक्-कार्य करने में सामर्थ्यवान् होता है। वेद-ऋचा "विद्वान् पथ: परस्ता ऋजु नेषति", सार्थक तब ही-हो सकेगी, जबकि हम ऐसी भी प्रार्थना अपने प्रभु से करें कि हम अपने जीवन भर किसी वस्तु की प्राप्ति की आशा में, उसके दास न हो सके, क्योंकि जो; व्यर्थ की आशा के दास हैं, वे सारे संसार के दास हैं और जिनकी आशा दासी है; उनका समस्त संसार दास है। ऐसा ही यजुर्वेद की ऋचा का उपदेश है।

यथा :- आशाया: ये दासा: ते दासा सर्व लोकस्य।
येषां आशी दासी; तेषां दासायते लोक: ।।

धर्म का मूल सत्य-धारणा में निहित है और नाम-निरंजन का वृक्ष जिस स्थल पर पत्रित, पुष्पित तथा फलित होता है, उसी का नाम हृदय मन्दिर है। हृदय-मन्दिर को जिसने स्वच्छ कर लिया हो, यही सद् भावों से युक्त सच्चा साधु है और उसी के पावन-पवित्र हृदय-मन्दिर में परमात्मा का सदैव निवास होता है। साधुजन श्री हरि के सत्य-स्वरूप होते हैं। इसी उक्ति को चरितार्थ करते हुए, कल्कि पुराण में ऐसे भी विगदित किया गया है कि :-

श्लोक :- साधूनां हृदयं धर्म्मो वाचो देवा: सनातना:।
क्षयाणि कर्माणि यत: साधूर्हरि स्वयम्।।
क० पु० तृ० अ० श्लोक २१

अर्थात् सच्चे साधुओं का हृदय ही धर्म है, उनके मुख से नि:सृत

वाक्य ही अथवा वाणी ही, 'ब्रह्म' है; जो मंत्र ऋचा के समान है। उसे ही सनातन देव कहते हैं। साधूओं के कर्म ही कर्म-दोष के क्षःय होने के कारण मात्र होते हैं। अतएव साधु जन स्वयं ही एक सनातन परमात्मा के सत्य स्वरूप (नारायण) की मूर्ति रूप हैं।

कर्म में चाहे भिन्नता हो; परन्तु धर्म, नर श्रेःष्ठ के लिए ही नहीं, अपितु नारी श्रेःष्ठा के लिए भी समता का संकेत करता है। नारी से ही नर उत्पन्न हुआ है तथा नरों में श्रेःष्ठ साधु ही होते हैं। एक सति साध्वी नारी माता के प्रति हम यही कह सकते हैं कि :-

दोहा :- धन्य री माता सुन्दरी, साधू जाये पूत।
साधू न होते जगत में, साहिब जाते ऊत ।।

सति-साध्वी एवं पुंचला नारी में विभेद, केवल; उनके चारित्रिक गुणों के कारण होता है। शील-सन्तोष-आचार-विचार और दया-ये पाँचों स्वाभाविक गुण-नर हो या नारी हो, सभी को मुक्ति के द्वार तक ले जाने वाले नैःसर्गिक एवं स्वयं संवेग मात्र होते हैं। नारी के प्रति हम यदि यह कहैं कि :-

दोहावली। जननी री तू साध जन, कैं जन भागावन्त।
भागावन्त के द्वार पर, पड़े रहैं साधु-सन्त ।।१।।
जननी री तू सन्त जन, कैं जन दाता-शूर।
कैं जननी रह बाँझड़ी, काहे ग्वांयौं नूर ।।२।।

तब तो नारी वर्ग को अपने आचरण-व्यवहार को सुधारने का एक सच्चा उपदेश तो मिल ही जायेगा। आगम-निगमों की शिक्षाओं में, पूर्वाचार्यों-ऋषियों के महावाक्यों में, पुराण-स्मृतियों के इति वृत्तों में, कुरान-अवेस्ता की आयतो-हिदायतों में, बाइबिल-उपनिषदों के शिक्षाप्रद उपदेशों में अथंच लोक प्रसिद्ध अन्य ग्रन्थों-शास्त्रों के सिद्धान्तों में, जो भी अपरिहार्य कलंक के टीके; नारियों के प्रति लगाये गये हैं, उन्हें अद्यतन युग की नारियों को स्वीकृत ही नहीं करने चाहिए।

हे नारियों-जितना उत्कृष्ट नर-धर्म उनके लिए है, उतना ही उत्कृष्ट नारी धर्म तुम्हारे लिए भी है। उत्कृष्टता का उत्कृष्टता से मेल होता है और उत्कृष्टता से निःकृष्टता का कभी भी मेल नहीं हो सकता है। ऐसा मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण तुम्हें अपने अभ्यन्तर में करना चाहिए। अनिष्ट करने वाले देवता या देवियों का आह्वाहन करना, न करने के बराबर होता है, क्योंकि जिन अनिष्टकारी देव-विशेषों की पूजा-अर्चना करने पर, तुम्हारे अन्तः स्थल में शूद्रत्त्व एवं ग्लानि की भावना जागृत होती हो, उन देवी-देवताओं को तुम आराध्य योग्य ही न समझिये। जिस देवी-देव की वंदना करने पर, तुम्हें भेंट स्वीकार करनी पड़ती हो, तुम्हारे व्यक्तित्त्व पर कलंक लगता हो और जैसा-तैसा उपाक्रम करके तुम्हें पछताना भी पड़ता हो-तो ऐसे घृणित अभिचारों के प्रयोगों को तुम्हें त्याग देना ही समीचीन होगा। जहाँ तुम्हारा दृढ़ विश्वास जमता हो, जहाँ तुम्हारे शील की रक्षा होती हो और जहाँ देव तुम्हारी अभ्यर्थना सुनता हो; वहीं तुम्हारे लिए पूजा-पाठ करने का देवालय है।

विवाहित नारियों के लिए उनका पति ही परमेश्वर है। वही नारी सधवा कही जाती है, जो अपने पति की अनुगामिनी एवं आज्ञा कारिणी होती है। देव और लेव का नदर्थ तो नारियाँ समझती ही हैं, क्योंकि जो अमूर्त आत्मा प्रार्थना करने पर कुछ समर्पण कर दें, तो वही देव है और याचना करने पर भी 'यह भी-वह भी दो' पुनिः २ तुम्हारे से भेंट उपहार माँगता हो; वही लेव है। ऐसे लेव की आराधना करने से तुम्हें लाभ नहीं, हानि ही हानि हैं। लेव की अपेक्षा साधारण कोटि का मनुष्य ही तुम्हारा पति हो-वही सही है। जो राग-द्वेषों में लिप्त रहता हुआ भी, तुम्हारे संग-संग गृहस्थ के सकल कार्यों में तुम्हारा साथी हो, वही तुम्हारा वास्तविक पति देवस्वरूप है। हाँ, तुम्हारे निकृष्ट पति से तो दानव ही श्रेष्ठ कहलाता है, जो अपने धर्म-ध्येय का दानवी ध्यान रखता है।

हे नारियों ; तामसी इष्ट, राजसी इष्ट, और सात्त्विक इष्ट या आदि देव-महादेव, श्री ब्रह्मा जी तथा श्री विष्णु जी आदि देव हैं और उनकी संगिनी आदि देवी भवानी जी (पार्वती जी), ब्रह्माणी जी (सावित्री या ब्राह्मी) तथा श्री लक्ष्मी जी (माया) हैं; उनमें से तुम किसकी आराधिकाएँ हो? उन देवी-देवों में भी त्रिगुणो के कारण पारस्परिक

स्पर्धा बनी रहती थी। नेष्ट इष्ट की बातों पर तुम्हें विचार ही नहीं करना चाहिए। शिव शूद्रों के राजा थे; अघोरी-क्रियाएँ करते थे; श्मशानों की भस्मी लपेटते थे, मूर्दे सेवन करते थे, रुण्डों-मुण्डों की माला धारण करते थे; और सबसे बड़ा गुण उनमें यह था कि वे सृष्टि का संहार कर देते हैं। मर्घट में सोने वाले, बनखण्डों में विचरण करने वाले और अपने संग भूत-प्रेत-पिशाच, शंखनि-डंकनि पूतनि, काली-मसानि-चण्डी आदि को रखने वाले-शिव महादेव पार्वती के संग जब ताँडव नृत्य् करते हैं तो उनके नृत्य रास में बावन भैरों, छप्पन कलवों, कबन्धों, चौंसट योगनियों और बहत्तर वीरों का नृत्य भी सम्मिलित होता है। माँस-भक्षण, सुरा-सेवन, भंग-तम्बाखूँ-धतूरे का अम्ल प्रयोग किया जाता है। वे तो वे ही हैं। तुम सात्त्विक भावों से शिव की भक्ति करने के निमित्त; उन्हें बेल-पत्र मात्र ही अर्पित करिये, वे औढर दानी और सद्योजात प्रसन्न होकर, तुम्हारी मनोकामनाएँ पूर्ण कर सकते हैं।

हे नारियों! तुम्हें गृहस्थ कर्म करने ही पड़ते होंगे? बली-वर्धन कर्म तो अत्यन्त घिन्नोना है। पितर गणों की पूजा और श्राद्ध करने से तुम्हारे घर के पितर तृप्त हो जाते हो-ऐसा संभव नहीं। सोचिये, यदि तुम्हारे पूर्वज ऐसी स्थिति में हो, तो उन्हें श्राद्धान्न खिलाकर प्रसन्न करना कोई कठिन काम नहीं, परन्तु यह अंधविश्वास और रुढिवादिता है-तुम्हारे पितरों ने कहीं तो जन्म लिया ही होगा-यदि स्वर्ग-नरक और आवागमन को मानती हो तो-सोचिये?

ब्रह्मा जी राजसी-वृत्ति में लीन आदि देव कहे गये हैं। नाद-बिन्द तथा रज-वीरज से संयुक्त जीव सृष्टि के रचयिता आदि देव वे ही देव हैं। उनकी प्रथमावस्था 'पंच शीर्षक ब्रह्म' के रूप में प्रकट हुई। इस पद की हम आलोचना-प्रत्यालोचना नहीं करेंगे-क्योंकि कारण एक है; तुम्हारी अभिष्ठा-सरस्वती रुष्ट न हो जाय। सरस्वती के साथ गायत्री और सावित्री नाम की दोनों सन्ध्या-शक्तियों को तुम जानती हो, ब्रह्माजी के मानसी पुत्रों-सनकादिक या नारद को भी जानती हो और यह भी जानती हो कि ब्रह्मा जी के मुख से निःसृत ब्राह्मण वर्ण, वक्षःस्थल से क्षत्रिय वर्ण, ऊरुओं या जंघाओं से वैश्य-वर्ण एवं पदों से शूद्र-वर्ण उत्पन्न हुए हैं। ऐसा व्युत्पत्ति-कर्म किसी अन्य देव में विद्यमान् नहीं था-ऋग्वेद के पुरुष सूक्त

की ऋचा के समान नारी-सूक्त की रचना नहीं कीग यी है, यह तुम्हारे लिऐ उपहास्यास पद की विचित्र सी ऋचा रचना मात्रहै -तुम्हारे प्रजनन समय के पातक के समान सूतक वाला ब्रह्माँ राजसिक वृत्ति वाला देव है। देखिये :-

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् वाहू राजन्य कृतः।
ऊरु तदस्य यद्वैश्य पदभ्यां शूद्रो अजायत।

ऋ० सं० म० १० सूक्त ८ मंत्र १२

श्री जिनकी संगिनी है; ऐसे आदि देव विष्णु जी सृष्टि के पालनहार के रूप में स्वयं प्रकट हुए। लक्ष्मी तुम्हारे और अन्यों के घरों में भी निवास करती है, जिसको माया कहा गया है। माया के चक्कर में पड़कर नर प्राणी श्री हरि को भी भूल जाता है, परन्तु माया उपार्जन या धन-संचयन की लोलुप-वृत्ति से कभी भी आत्म-तृप्ति नहीं हो सकती। भूखे, कंगले, निर्धन, अपंग एवं ऋणि जन चाहे हाय माया, हाय माया, करते रहे माया की पूजा करते रहें अथवा श्री की तलाश में हाथ पसारकर माँगते-फिरते रहें-लक्ष्मी फिर भी उनसे दूर भागती है। अतएव नारियों; जैसे गृहस्थाश्रम में तुम अपना सुखमय या दुःखमय जीवन-यापन कर रही हो-धैर्य पूर्वक करती रहो, परन्तु अपने शील-सन्तोष, आचार-विचार और दया; इन मनोविश्लेषणात्मक गुणों का परि-त्याग मत करना, क्योंकि पुरुषों की अपेक्षा तुम्हीं इस कलियुग में आगे बढ़ती जा रही हो। अगले अध्याय में तुम यह भी पढ़ोगी कि जहाँ शूद्र ही धन्य हैं और जहाँ कलियुग ही धन्य हैं; वहाँ तुम जैसी नारियाँ भी धन्य हैं।

हे नारियों "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, तत्र रमन्ते देवताः"; ऐसा भी तो तुम्हारे उज्जवल-यशस्वी व क्तित्व के प्रति ही कहा गया है। अपने कुल परिबार की तुम्हीं लाज हो। श्रीमद् देवी भागवद् महापुराण की पूज्या पात्रिका का सत्य स्वरूप तुम्हारे ही सदृश्य है। तुम अपना त्व्यक्तिव भ्रष्ट मत करना, यदि ऐसा करती हो तो तुम्हारे कुल परिवार पर कलंक का टीका लगेगा और तुम्हारी ही मर्यादा नष्ट होगी अतः तुम अदोषी ही रहना। यही तुम्हारी गरिमा है।

तृतीय पटल

नारी ही धन्य है।

योषित : साधु धन्यास्तास्ताभ्यो धन्यतरोऽस्तिकः।

(श्री विष्णु पुराण, षष्टांश, दूसरा अध्याय, श्लोक ८)

नारियाँ ही साध हैं; वे ही धन्य हैं और उनसे बढ़कर और कौन धन्य है;-यह महामुनि व्यास जी की उक्ति है, जो आजकल के कलियुग में चरित्रार्थ हो रही है। उन्होंने ऐसा भी अभिव्यक्त किया था कि कलियुग ही श्रेःष्ठ है और शूद्र ही श्रेःष्ठ हैं। श्री विष्णु पुराणोक्त प्रामाणित तथ्य-सत्य है; जैसे :-

शूद्रस्साधुः कलिस्साधुरित्येवं शृण्वतां वचः।

श्री वि० पु० षष्ट-अंश, दू० अ० श्लोक ६

कलियुग ही श्रेःष्ठ और धन्य है; शूद्र ही श्रेःष्ठ और धन्य है तथा नारियाँ ही श्रेःष्ठ और धन्य हैं। इन तीनों से बढ़कर और कोई श्रेःष्ठ नहीं है।

वर्णाश्रम-धर्म का पालन करने से जो फल की प्राप्ति सतयुग में दस वर्ष में, त्रेता में एक वर्ष में, द्वापर में एक मास में हो जाया करती थी; बही कलियुग में केवल एक रात-दिन में प्राप्त हो जाती है। जो फल-प्राप्ति सतयुग में ध्यान करने से, त्रेता में यज्ञादि करने से, द्वापर में

पूजाचार करने से हो जाया करती थी; वही प्राप्ति भगवान के नाम-स्मरणमात्र से ही कलियुग में हो जाती है। नारियों को कलियुग में उसके नाम स्मरण अथवा अलख-पुरुष (भगवान) के नाम-जपन से सुख विलसेगा।

दूसरी तथ्यात्मक बात यह है कि द्विज या त्रिवर्ण अभिजात्य ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मों से विमुख हो रहे हैं। उनमें स्वतन्त्रता में स्वच्छन्दता पनप रही है। उनकी ऐसी स्वाभाविक उच्छृंखलता उनके ही वर्णाश्रम-धर्मों में बाधक तत्त्व बनती जा रही है। कलियुग के समय में शूद्र वर्ण का जन-समुदाय अपनी सेवा परायणता को न भूलकर भी प्रगति कर रहा है। अपने सद्कर्मों के कारण, वे गन्धर्वलोक को गमन न करके इन्द्रलोक और अगमलोक तक भी जायेंगे। सति-साध्वी नारियाँ भी सद्गति को प्राप्त होवेंगी। व्यास जी ने विष्णु पुराण में कहा भी है :-

भक्ष्याभक्ष्य नास्यास्ति पेयापेयेषु वै यतः।

नियमो मुनिशार्दुलास्तेनासौ साध्वितीरितः॥

वि० पु० अष्ट-अंश दूसरा अध्याय श्लोक २४

हे मुनि पुंगव (शार्दुल) शूद्र को भक्ष्य और अभक्ष्य अथवा पेय-अपेय करने का कोई ज्ञान नहीं होता है; नहीं उसमें नियम-विधान ही होता है-इसीलिए मैंने उसे साधु श्रेष्ठ कहा हैं; परन्तु शूद्रवत् खान-पान तो अन्य वर्णों में भी ऐसा ही देखा जा रहा है। शूद्र समाजी लोग अपने आप में सुधार ला रहें हैं। शूद्रा नारियाँ अन्य वर्णीय-नारियों की अपेक्षा वर्ण-संकरता और कर्म-संकरता की ओर अपने आप को अग्रसर नहीं कर रही हैं।

ब्रह्मा जी की मलिन पीठ से समुत्पन्न कलियुग और पगों से जायमान शूद्रजन नमस्कार करने योग्य हो जाय तो उसके वामांग से उत्पन्न विन्दमाना नारी भी नमन योग्य क्यों न हो जाएँ? कुलाचार निभारण, मर्यादा-पालन शील-सुधारण और स्वभाव-सवारण करना नर और नारियों का परम कर्तव्य होता है। "जिसकी उतर गई लोई। उसका क्या करेगा कोई"॥ ऐसी कहावत अथवा नंगी या नंगा गंगा घाट पर नहाये। शीलवन्ती नारी वहाँ कैसे जाये॥ ऐसी कहावत चारित्रिक अवमूल्यों का

स्पष्टीकरण कर देती हैं। गीता के महावाक्य 'कामातुराणां भयं न लज्जा:' के अनुसार शूद्रा नारियों में भय और लज्जा तो बनी हुई है।

अन्य वर्णों की नारियों के समान शूद्रा नारियाँ अपने आप को समयानुसार नहीं बदल रही है। उनके लिए औचित्यता इसी बात में है कि चाहे अज्ञानता या निर्धनता-उनको सेवा-पारायणता की ओर ही अग्रसर कर रहीं हो-हाँ; शारीरिक परिश्रम करना तो आचरण सम्बन्धी जाति-दोष नहीं है, जीविकोपार्जन करने में, वे जाति-कानि तो नहीं हो रही है और न वे किंकर-संकरता से स्वामी संकरता की ओर ही बढ़ रही हैं। अत: वे सति-साध्वी अति धन्य हैं।

नारियों के लिए यदि हम ऐसा कहें कि :-

अविनीत स्वामीलाभादस्वामिलाभ: श्रेयान्। अर्थात उच्छृंखल पति मिलने कीं अपेक्षा उसका (पति-वरण के लिए) न मिलना ही अच्छा होता है; क्योंकि स्त्रियाँ तन-मन-धन और वचन से अपने पति की सेवा-सुश्रुष करती हैं तथा मनुष्य के शुभ लोकों को प्राप्त कराती है। व्यास जी ने तभी तो कहा है :-

शूद्रेश्च द्विजशुश्रुषातत्परैर्द्विज सत्तमा:।
तथा स्त्रिभिरनायासत्पति शुश्रुषयैव हि ॥

(श्री विष्णु पुराण षष्ट-अंश दूसरा अध्याय श्लोक ३५;

हे द्विज श्रे:ष्ठों ! शूद्रों को सेवा-परायण होने से तथा नारियों को स्वपतियों की सेवा करने से ही, उन्हें स्वाभाविक रूप से, उनके धर्म की प्राप्ति हो जाती है। इसीलिए कलियुग में शूद्र और नारी ही धन्य हैं।

"सम्पादितात्मा जितात्मा भवति" अर्थात् जितात्मा ही जितेन्द्रिय बनता है और 'विज्ञानेनात्मानं सम्पादयेत्' यानि आत्मविद्या को विज्ञान कहते हैं; जिसका आश्र:य लेकर नर या नारी को आत्मोन्नति करनी चाहिए। सति-साध्वी विनयशीला नारियाँ अपने वृद्धावस्था वाले सास-

ससुर की सेवा करके आत्मसुख प्राप्त करती हुई, उनसे शुभाशींवाद प्राप्त कर लेती है। जब नारी के मन में अपने सास-श्वसुर की सेवा करने का आत्म-विज्ञान उमड़ा ही रहता है; तब वह उनके पास बैठकर उनकी अनुभवी शिक्षाओं को भी ग्रहण कर पाती है और एक आदर्श ग्रहणी मानी जाने लगती हैं। इसीलिए ऐसी नारियाँ श्रे:ष्ठ हैं।

कलियुग में धर्मशास्त्रों की महत्ता गौण हो गई है और क्यों न हो? जिनमें नारी और शूद्र के प्रति निन्दाएँ भरी पड़ी हों। शास्त्र-सम्मत धर्म के उपदेशों ने शूद्रों एवं नारियों के धर्म-कर्म के अधिकारों और उत्तरदायित्वों को लांछित किया है। आज के युग में तो सर्वाधिकार सबके लिए सुरक्षित है, जिनका उत्तरदायित्व निभाना उन्हीं के विवेक और उनके कार्य-व्यवहार की सूझ-बूझ पर आधारित हैं।

विशेष कोमल स्वभाव वाले अपने पति का प्राय: उद्दण्ड नारियाँ ही अपमान करती हैं और अतिशय दु:ख दारुण देने वाले तीक्ष्णा स्वाभाविक अपने पति का सति-साध्वी, सुशील और लज्जालु अपने पति को निभाने वाली नारियाँ उद्विग्न नहीं हुआ करती है। इसीलिए नारियों को "अकुलीनोऽपि विनीत: कुलीनात् शिष्ठ:"। अर्थात् जो कुलीन न होते हुए भी विनीत व सज्जन पति को स्वयं वरण करके या उसको पति प्रेम-बन्धन से प्राप्त करके, उसको वह एक कुलीन उज्जड़ दुर्व्यसनी पति से सदैव श्रे:ष्ठ रहेगा। ऐसा विचार करती हुई कुमारी बालिकाएँ यौवन सम्पन्न होने पर अपना पति वरण करें।

कलियुग के अनुरूप नारियों! तुम पुरुषों से किसी भी क्षेत्र में कम नहीं हो। जिन युगों में तुम्हारी उपेक्षा की गई है; उसको स्मरण करो और कलियुग श्रे:ष्ठ तुम्हारा श्रे:ष्ठ साथी है-प्रगति करो, क्योंकि तुम्हारे धर्माचरण, शालीनता और शैक्षिक स्तरों में पुरुषों की अपेक्षा उज्वलता स्पष्ट प्रकट होती जा रही है और तुम्हारी बौद्धिक-मानसिक क्षमता का विकास भी स्पष्ट होता जा रहा है।

देश काल, जाति और कलियुग के समयानुसार शूद्र और नारी-दोनों ही वर्ग श्रे:ष्ठता की ओर अग्रसर होते जा रहे हैं। हर मनुष्य

प्राणी के बंधन और मोक्ष का कारण केवल मन है। विषयों का संग करने से, वह बन्धनकारी ग्रौर निःसंग करने से विमुक्त होता है। जो नारी, अपने कुल-परिवार व अपने शील-स्वभाव-सदाचरण का मर्यादा पूर्वक पालन करती हैं; वह सम्मान ग्रौर ग्रादर की पात्रा होती है। पतिव्रता नारी से श्रेःष्ठ तपोनिष्ठा नारी श्रेःष्ठ होती है। पतिव्रता नारी अपने पति की सेवा-शुश्रुषा करते हुए, उसकी आज्ञा में रहकर ग्रौर उसके दुःख-कारक कारणों को देखकर, दुःखी होती है। वह उसके सो जाने पर सोती है ग्रौर उसके जगने से पूर्व ही जाग कर अपने समस्त गृह-कार्यों को सम्पन्न करती है। उच्छ्रंखलता, वाचालता, स्वच्छन्दता ग्रौर प्रगल्भता न करने की, उसकी प्रवृत्ति होती है। जप-तप साधन, व्रत-उपवासादि, इस दिशा में उसके लिए कोई महत्त्व नहीं रखते। अनसूया की भाँति वह ग्रपने पति से अत्रि की भाँति तपोगुणों में कम नहीं होती है। नारी के लिए उसका पति ही परम परमेश्वर समझा जाता है। गुरु वरण करके तपोनिष्ठा नारी पार्वती तो नहीं बन सकती है। ग्रपने पति के दुःखों में दुःखी रहकर, वह सीता-सावित्रीं बन सकती है ग्रौर ग्रपने गुरु के ग्राश्रम पर रहकर वह, शकुँतला बन सकती है। दोषी अहिल्या-सा कलंकित सुन्दर लावण्य नारी के घोर पाप का कारण हो सकता है; जिससे मुक्ति पाना ईश्वरीय-ग्राधीन दया भाव पर आधारित है।

पतिव्रता एवं तपोनिष्ठा नारी को प्राप्त करना पुरुष के लिए बड़े ही सौभाग्य की बात है; किन्तु पृथ्वी पर ग्रनेकों ऐसे दुर्भागी लोग भी होते हैं, जो सति-साध्वी नारी को प्राप्त करके भी निन्दा के पात्र होते हैं। ग्रतः चाणक्य ऐसे पुरुषों को त्याग देने से नारी में कोई दोष नहीं मानते हैं ग्रौर उनका ऐसा कहना है कि :-

नीचत्वं प्रदेशं वा प्रस्थितो राजकिल्विषो !

प्राणाणाभिः हन्ता पतिस्त्याज्यः क्लेबो वा पति ॥१॥

कौटिल्य ग्रर्थशास्त्र तीसरा ग्रधि० ग्र० दूसरा-पृष्ठ २५४

अर्थात् कूटनीतिज्ञ ग्राचार्य चाणक्य का मत है कि जो मनुष्य तिशय नीच प्रवृत्ति का हो, जो सदा प्रदेश में ही निवास करता हो, ो राजद्रोह ग्रादि महापराधों का पापी हो, जो प्राणघाती हो; जो ाति और धर्म से पतित हो तथा नपुंसक हो; तो ऐसे पनि को यदि

नारी त्याग देती है तो उसमें, उसको कोई दोष नहीं लगता।

नारी उपरोक्त प्रकार के पति का परित्याग करके अपने सतित्व के कारण तपोनिष्ठा हो जाये और व्रतोपासना में अपने समस्त जीवन को लगा दे, तो उसके लिए कोई लांछनीय दोष नहीं समझा जाना चाहिए; क्योंकि वह भी मुक्ति पाने की अधिकारिणी होती है।

पूर्वाचार्य कौटिल्य ने ऐसा भी अभिहित किया है कि यदि पति के द्वारा अपमानित होकर कोई नारी (शकुन्तला की भाँति) अपने पति के किसी भाई-बन्धु या सगे सम्बन्धी, गुरु या आचार्य, आदरणीय सज्जन व्यक्ति, ग्रामपति, सन्यासी अथवा अपने भाई के पुरुषहीन घर में चली जाये, तो उसको अपराधी नहीं माना जाता है और न साध्वी नारियों के छल अथवा व्यभिचार की सम्भावना ही नहीं बनी रहती। प्रमाणित है कि :- "पतिज्ञाति सुखावस्थ ग्रामिकान्वाधिभिक्षुकी ज्ञाति कुलानामन्यतमं पुरुषं गन्तुमदोषं इत्याचार्याः। सत्पुरुषं वा ज्ञातिकुलम्। कुतो हि साध्वीजनस्य छलं सुखमेतदवबद्धुम्। इति कौटिल्यः॥

कौ० अ० शास्त्र ३ अधि० ४ अ० धर्मस्थीयम् (पृष्ठ २५८-५९)

प्रत्येक गृहस्थ-आश्रमी का जीवन प्रवाह चारपायों के आधार पर टिका रहता है और वे हैं-(१) धर्म (२) व्यवहार (३) आचरण और (४)प्रबन्ध; क्योंकि धर्म सत्य पर टिका रहता है; अर्थात् घर गृहस्थी धर्म-शास्त्रोक्त विधि-निषेध के अनुसार विकसित रहता है। कुल-परिवार या जाति आदि का व्यवहार सामाजिक साक्षियों पर प्रतिष्ठित रहता है, चरित्र अथवा लोकाचार, कुलाचार और देशाचार; परम्परागत आचार-विचार के आधार पर टिका रहता है, किन्तु गृह का प्रबन्ध करना यथोचित रीति से होना सबसे श्रेःष्ठ कहलाता है। जिस घर की नारियाँ बिगड़ जाती हैं, उस घर की उपरोक्त तीनों शाखाएँ भी कुँठित हो जाया करती हैं। समयानुसार कुमारी और कुमारों की विवाह-शादियों का प्रबन्ध करना गृहस्थियों का मुख्य धर्म है।

विना कोख के नारी का आदर नहीं होता; क्योंकि पुत्रादि को जन्म देने के लिए ही उसकी सृष्टि हुई है। पहले पुरुष वंध्या (बाँझ) नारी के कारण, मृतक पुत्र उत्पन्न करने के कारण, कन्या ही कन्या उत्पन्न करने के कारण और रजःस्वला अथवा प्रसवा न होने के कारण

पनी पूर्व-विवाहिता (अधिविन्ना नारी) को रखते हुए अथवा रित्यक्त करके क्रमशः आठ, दस और बारह वर्ष बाद अन्य विवाह र लेता था-यदि वह पुत्राभिलाषी ही होता था तो !

इस्लाम धर्म में इस नियम का कोई बन्धन नहीं है। अनेक पुरुषों संसर्ग से पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने वाली नारी निन्दनीया मानी ई है। ऐसा सभी धर्मवेत्ता कहते हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल अविवाहित बालिकाएँ या कुँवारी-कन्याएँ, वरयोग्या नहीं समझी ाती थी। बारह वर्ष लाँघ जाने पर, वह प्रातव्यवहारा (बालिग) ानी जाती थी। सोलह वर्ष की आयु वाला नव युवक भी बालिग प्राप्त व्यवहार = गृहस्थ चलाने योग्य) कहलाता था; परन्तु आज के ुग में विवाह-शादी के बन्धन ढीले पड़ गये हैं।

राज-शासन की आज्ञा के अनुसार अन्तर्जातीया विवाहों के प्रति ोई प्रतिषेधाज्ञा नहीं है और मनु आदि के धर्मशास्त्रों के नियमों के न्धन गौण रूप धारण कर चुके हैं। मृत्यु, व्याधि, विपत्ति एवं गर्भ- सव के समय नारियों का अपने पीहर रहना निशिद्ध नहीं समझा जाता । सजातीय और विजातीय नर-नारियों के अन्तर्जातीया विवाहों में भ्यता और संस्कृति का कोई ह्रास नहीं होता है।

सवर्णा असवर्णा नरियों ! तुम सभी शिक्षित हो और पूर्वाचार्यों की मृतियों एवं धर्म-शास्त्रों से परिचित हो ही; परन्तु अन्तर्जातीया-विवाह लिए तुम्हें ब्राह्मणों और क्षत्रियों के अन्तर्जातीया स्त्री अर्थात ब्राह्मण की त्रिया तथा क्षत्रिय की वैश्या स्त्री से जायमान पुत्र 'सवर्ण' और एकान्त- ातीया अर्थात् ब्राह्मण की वैश्या अथवा वैश्य की शूद्रा स्त्री से जायमान असवर्ण' पुत्रों को वरण करने के लिए, अपने सौम्य, सुशील स्वभावों के नुरूप अपने वरों को स्वयंवर रूप से चुनना भला होगा-लम्पटता से नहीं।

अन्तर्जातीया अथवा स्वम्बर द्वारा सम्पन्न होने वाले विवाहों के ति कुछ लोगों का अनुमान है कि भावी युग में अतीत-कालीन जैसी विवाह पद्धति स्थान ग्रहण करेगी। भावी प्रबल और बलवान होती । वर्तमान समय की विवाह-शादी की प्रणालियों से प्रत्येक मानव रिचित ही है। प्राचीन संस्कृति और सामाजिक बंधन, जब इस समय ी ढीले पड़ रहे हैं, तो भावी युग-जैसा कि अधिकांशतः विद्वान कहते

हैं-कैसा होगा ? जबकि कलियुग की अबाध्य गति और भी घिन्नोनी होती जा रही है।

एक कहावत प्रसिद्ध है कि "माँ पै धी पिता पै घोड़ा। बहुत नहीं तो थोड़ा-थोड़ा ॥" अर्थात् तुख्म ताशीर सोहबत का असर पड़ कर रहता है। प्रत्येक बालिका जन्म-जात ही अपनी माँ के गुणों अवगुणों के अनुरूप आचरण-व्यवहार करती है; अधिक नहीं तो अल्प ही सही,-जिस प्रकार जन्म-जात बालक अपने पिता के आचरण के अनुकूल स्वाभाविक आचरणों का अनुशीलन करता है। इन तथ्यों के विपरीत यदि उनके आचरण-व्यवहारों या कार्य-कलापों में प्रवृत्ति जनक या व्युत्पत्ति-जनक अन्तर पाया जाता है; तो उसमें उनका दोष नहीं होता; परन्तु उनके माँ-बाप का दोष होता हैं।

प्रकृति सिद्ध या साधारण और उत्पत्ति सिद्ध या अपूर्व उपाय से कराया गया शुभ और अशुभ कर्म लोक प्रशन्सा और निन्दा का कारण बन जाता है। सांकेकित भाषा में, यदि कोई मधुपान शाला में मेदक, प्रसन्ना, आसव, अरिष्ट, मैरेय, मधु, अंग्रेजी, देशी और ताड़ी आदि प्रकार की शराब पीकर घर आए, तो उसके आचरण का कुप्रभाव उसके सकल परिवार पर अवश्य पड़ कर रहेगा। ऐसी अवस्था में कुल में क्षय, अवनति, सामान्य स्थिति में परिवर्तन और सामाजिक आदर मान में कमी एवं अनादर होता है।

आतमगुण सम्पन्ना नारियों को विदित हो कि कर्म विशेषकर दो प्रकार के होते हैं :- एक तो मानव-कर्म और दूसरा दैव-कर्म। नारियों को अपने योग-क्षेम के निमित्त और अपने कार्यों में आने वाली विपत्तियों के निवारणार्थ मानव-कर्म को ही अधिक श्रे:य देना चाहिए। मानव-कर्म ही दैव-कर्मों से मिलकर लोक यात्रा और गृहस्थ-पालन का निर्वाह करते हैं। धर्म या अधर्म रूपी अदृष्ट के द्वारा जो प्रशन्सनीय या निन्दनीय कर्म किये या कराये जाते हैं; वे दैव कर्म कहलाते हैं, जो स्वभाव और सत्त्व (ताशीर एवं तुख्म) के अनुसार प्रत्येक के अभ्यन्तर में समाये रहते हैं। धर्म स्वरूप अदृष्ट नामक दैव-कर्म जो कोई जैसा भी काम कराता है और उससे मान-अपमान, लाभ-हानि या जीवन-मरण का जो भी संयोग होता हो-या कर्म फल के उपभोग का सुयोग फल उपस्थित होता हो तो-ऐसे कर्म को सोच समझकर ही करना चाहिए।

चतुर्थ पटल

संत समागम में नारियों का संमिलन

भविष्य में प्रसिद्ध होने वाले संत की भार्या रत्नावली ने कहा था;

दोहा :- जितनी नीत हराम में; उतनी हर में होय।
चला जाये बैकुण्ठ को; पल्ला न पकड़ै कोय ।।

कामुक, अनाश्रित, परपालित और अपविन्द एवं वही गौस्वामी तुलसीदास अपनी नारी के उपरोक्त वचन सुनकर गृह त्यागी-वैरागी बन कर, जंगल को तप करने के निमित्त निकल गये। अपने वैराग्य-कालीन समय में, उन्होंने अनेक संत-समागमों का पर्यवेक्षण करते हुए, अपने आत्म-ज्ञान को निखारा। उनके मन में जब तपोवृत्ति की स्फूरणा-जागृत हो गई, तब वे तुलसी वन में जाकर तपोलीन हो गये। वहीं उन्हें सिद्धि-प्राप्ति हुई। कहा भी जाता है कि :-

दोहा :- तुलसी-तुलसी सब कहैं, तुलसी जंगली घास।
तुलसी के प्रताप से, हो गए तुलसी दास ।।

बस, उन्हें 'रामबोला' न कह कर) सभी 'तुलसीदास' कहने लगे। तुलसीदास ने संत-समागम करने और हरि-कथा श्रवण करने को बड़ा महत्त्वपूर्ण माना है; क्योंकि इन दोनों की प्राप्ति भाग्यशाली मानव को ही होती है और धन-सम्पत्ति, घर-द्वार, सुत-सुता एवं सुन्दर नारी तो पापी पुरुष को भी प्राप्त हो जाती है। उनका कहना है कि :-

दोहा :- संत-समागम हरी कथा, तुलसी दुर्लभ दोय।
सुत, दारा और लक्ष्मी, पापी घर भी होय ।।

(तुलसी दोहावली)

रावण द्वारा श्री सीता जी का अपहरण किये जाने के पश्चात्, व्यथित होते हुए श्री राम ने लक्ष्मण को सीता के अपहरण किये जाने का कारण कहकर; उसको दोषी ठहराया और उसको मार डालने की

धमकी दी। श्री लक्ष्मण ने समीपवर्ती साधु-तपसियों को अपन व्यथित दशा का कारण बताया और किसी साधु-सन्यासी के निर्देशन करने पर, उसने अग्नि में एक ही लकड़ी रख कर-अग्नि को प्रज्वलित न होते हुए देखकर ऐसा कहा :-

दोहा :- अकेली लकड़ी न जलैं, नहीं उजाला होय।
राम लक्ष्मण कु मारि कर, बन में केला रोय ।।

श्री राम ने ऐसा सुनकर अपने भातृ लक्ष्मण को अपने गले से लगा लिया और श्री सीता जी की खोज करने का निश्चय किया। "समय टरें; बरसासे टर जाते हैं"; इस प्रकार लक्ष्मण के लिए संत-समागम 'उसकी जान वचावा' हो गया।

बन खण्ड में भ्रमण करते हुए राम-लक्ष्मण को एक भेड़ चराने वाला चरवाहा मिला, जो तकली द्वारा ऊन के डोरे तैयार कर रहा था। उससे सीता के बारे में "कुछ पता है", ऐसा पूछा। ऐसा पूछा जाने पर, उसने प्रत्युत्तर दिया था :-

कहावत :- मैं क्या जानूँ सीता-मीता। बुनूँ कम्बलियाँ गाऊँ गीता।।

संगत की रंगत न लगने वाले चरवाहे को, यह भी पता न था कि उसके सम्मुख खड़े हुए श्री विष्णु और शेषनाग के दोनों अवतार, उससे सीताजी के देखें जाने के विषय में पूछताछ कर रहे हैं।

हरि-चर्चा और सत्संग-समागम के निमित्त एक और दृष्टान्त प्रस्तुत किया जा रहा है। किसी स्थान पर एक दम्पत्ति का जोड़ा 'घुन और घुनियाँ' रहता था। भगवान के नाम-श्रवण मात्र से भी विमुख घुन को उसकी घुनियाँ-जो कि सदा हरि-भजन किया करती थी; वह सदा उसको यही कहा करती थी कि :-

"घुन रै घुन-कुछ राम-चर्चा तो सुन" ।।—अस्तु;

दोनों काल परास्त हुए और घुन ने कृषक के यहाँ बैल का जन्म धारण किया। घुनियाँ ने एक राजकुमारी का जन्म धारण किया। काल क्रम और आयु की गति के अनुसार, वह बैल हल जोतते-जोतते जर्जर-काय और वृद्ध हो गया। वह बड़ा दुःखी था और भगवान से अमूक भाषा में अपनी, उस बैल की योनि से छुटने की प्रार्थना किया करता था।

राजकुमारी का पाणिग्रहण-संस्कार होने पर; वह रथ में बैठी हुई ससुराल को जा रही थी। उसने अपने पूर्व-पति; उस बैल को कृशकाय अवस्था में देखा तथा अपने साथियों से उसको निकट से देखने की अभिलाषा व्यक्त की। निकट जाकर उसने, उस बैल के कान में कहा "मैं कहा करती थी-"घुन रे घुन-कुछ राम चर्चा तो सुन"। सुनी-अनसुनी करने वाले, राम-चर्चा के विरोधी, तेरी नास्तिकता का यही दुष्परिणाम है; जिसे अब तू भोग रहा है।"

बैल ने उस योनि से पिंड छुड़ाने का उपाय पूछा। राजकुमारी ने कहा, "मेरे यहाँ से चलते ही, तुम श्वाँस खींचकर और भूमि पर गिर कर पैर पीटने लग जाना। कृषक समझेगा कि तुम मरणासन्न हो गये हो और वह तुमसे हल नहीं जुतवाऐगा।" राजकुमारी के रथ में बैठ जाने के पश्चात् उस बैल ने तथाकथित वैसा ही किया।

कृषक हाँपता-चिल्लाता और यह कहता हुआ; राजकुमारी के पास आया कि "मेरे बैल के कान में न जानैं-तुमने कौन सा मंत्र फूंक दिया है-जिससे वह मर रहा है।" राजकुमारी ने पूर्व जन्म की कथा का वृतान्त बताकर उस बैल को राम-चर्चा न सुनने वाला अपना पहले जन्म का पति घुन वतलाया। ऐसा सुनकर उस कृषक ने उस बैल को फिर हल में नहीं जोता और उसकी पूर्णतः टहल करने लगा।

उपर्युक्त दृष्टान्तों का सारांश यह है कि गुरु मुक्ति पाने के उपाय वताने वाले होते हैं; शिष्य उन उपायों को अपनाये तो वह, मुक्ति प्राप्त कर सकता है और न अपनाने से उसको अधोगति को जाना पड़ता है। इसीलिए तीर्थाटन की अपेक्षाकृत् गुरु सेवा से चार पदार्थ अर्थात् धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष, मानव प्राणी प्राप्त कर लेता है तथा उससे भी अधिक फलों की प्राप्ति सत्संग करने एवं संत-समागम से हो जाती है। कहा भी है :-

दोहा :- तीर्थ गये फल एक है, गुरु गये फल चार।
सत्संग गये अनेक फल, कहै कबीर विचार॥
सत्संग की आधी घड़ी, आँधी की पुनि आध।
सत्संग के प्रताप से, कटै कोटि अपराध॥

आत्म-सुख-दुःख केवल पुण्य और पाप का आन्तरिक प्रवाह है, जिसके कारण देह में स्थित जीवात्मा सत् का संग और असत से निःसंग

चाहता है। ज्ञानी-विवेकी जीवात्मा सत्संग का सुख विलसने के लिए, असत्कर्मों का परित्याग करता है और विहित सद्कर्मों का आ:श्रय लेता है। ऐसा किये जाने पर उसको स्वर्ग-सुख की प्राप्ति होती है और अविवेकी-अज्ञानियों को नरक-दु:ख भोगना पड़ता है। इसीलिए सुखों की आवृत्ति और दु:खों की नि:वृत्ति हो जाने से प्राणी मात्र को सच्चा आत्म-सुख प्राप्त होता है।

सत्संगति का अच्छा प्रभाव चित्तवृत्ति पर अवश्य पड़ता है; इसी-लिए सत्संगों, संत-समागमों तथा ज्ञान-चर्चा के अखाड़ों में, आदर पूर्वक-यथोचित स्थान देकर, नारियों को भी वाद-प्रतिवाद के लिए नियोजित करना; उनके लिए एक प्रोत्साहन देने का कार्य होगा। पठन करने की अपेक्षा, गुणन करना, गुणन करने की अपेक्षा, दर्शन करना और दर्शन करने की अपेक्षा, श्रवण करना, क्रमश: और उत्तरोत्तर ज्ञान के सोपानों पर चढ़ना मात्र है; जिससे जीवात्मा को उसकी लक्ष्य-सिद्धी "विवेक" प्राप्त होता है। ऐसी मानसिक-प्रवृत्ति के निमित्त; कोई भी नारी अनधिकारिणी नहीं कही जा सकती है। जब कभी भी नर या नारी अपनी अभ्यन्तर-मुखी प्रवृत्तियों का दमन करके; चेतना प्राप्त कर लेते हैं, तभी ही, वे दोनो अपने-अपने सद्धर्मों का पालन करने वाले हो जाते है। कहा भी है :-

दोहा :- बहुत गई थोड़ी रही, नारायण अब चेत।
काल चिरैय्या जीव का, चुग रही आयु खेत ॥१॥
आघी गइ थोड़ी रही, थोड़ी भी चलि जाय।
कह नटवी सुन नाटवां, मधुरै ताल बजाय ॥२॥
आधी गइ थोड़ी रही, थोड़ी भी चलि जाय।
कह नटवां सुन नाटवी, ताल भंग न हो जाय ॥३॥

कोई राजा, उसका मंत्री, पुत्र और पुत्री किन्हीं नट-नटी के पारस्परिक कथनों को सुनकर; जिस प्रकार अपकार्यों से अवरुद्ध हो गये थे; उसी प्रकार श्रवण की गई बातों पर, यदि नर-नारी सोच-समझ कर उनका अनुरमन करें तो; उनमें लोक-व्यवहार के अनुरूप सद्-धर्माचरण और सदाचार स्वयं उनके सद्-हृदयों में स्थान बनाये रखेगा।

भक्ति के नौ भेद बताये गये हैं; -यथा ;-

श्लोक :- श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यात्म-निवेदनम् ।।
(श्रीमद् भागवत् पुराण स्कन्द ७ से)

अर्थात श्रवण, कीर्तन, प्रभु का नाम जपन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चना, वन्दना, दास्य, सखा-भाव और आत्म-निवेदन-ये नवधा भक्ति के नौ प्रकार हैं। ये "अपरा-भक्ति" के अन्तर्गत आते हैं और आत्मा के गौपनीय ज्ञान या नैःसर्गिक प्रतिभा को 'परा-भक्ति' के अन्तर्गत माना जाता है। इनके द्वारा प्रेमाश्र:यी और ज्ञानाश्र:यी भक्ति फलीभूत हुई हैं।

कलियुग में केवल प्रभु के नाम स्मरण की अधिक महत्ता मानी जाती है। इस संबंध में गुरु रविदास जी ने कहा भी है कि :-

सतजुगि सतु तेता जगी, दुआपरि पूजाचार।
तीनौ जुग तीनौ दिड़े; कलि केवल नाम अधार ।।
(श्री गु० ग्र० पृष्ठ ३४३)

श्री गुरु रविदास जी का अनुसरण करते हुए; गौस्वामी तुलसीदास जी ने भी 'श्रीराम चरित मानस' में ऐसा ही प्रवोधित करते हुए कहा है कि :-

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिर सुमिर नर उतरैं पारा ।।
(श्रीराम चरित मानस)

सत्संग की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए गुरु रविदास जी ने; अपनी एक वाणी उद्‌गीरण की है; जो इस प्रकार है :-

वाणी :- माधव ! संगति सरन तिहारी।
हम अवगुन तुम उपकारी ।। टेक ।।

गली-गली लौं जल बह आयो, सुरसरि जाय समायो।
संगत के परताप महातम; नाम गंगोदक पायो ।।१।।

स्वाँति बूँद बरसै फणि ऊपर, सीस विषै होइ जाई।
औही बूँद तैं मोती निपजै, संगति की अधिकाई ।।२।।

तुम चन्दन हम रेंड बापुरे, निकट तुम्हारे आसा।
सगत के परताप महातम, आवै बास सुबासा ।।३।।

जाति भी ओछी, पाँति भी ओछी, ओछा कस्ब हमारा।
नीचे से प्रभु ऊँच कियो है, कहि रविदास चमारा ।।४।।

(आधार ग्रन्थ :- लेखक की कृति संत रविदास माहात्म्य पृष्ठ ५६-५७)

और भगवान के नाम-स्मरण करने की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए गुरु रविदास जी ऐसा भी कहते हैं कि:-

साधु की जउ लेहि ओट। तेरे मिटहि पाप सभ कोटि कोटि।

कहि रविदास जो जपै नामु। तिसु जाति न जनम न जोनि कामु।।

(लेखक की कृति : 'अथ श्री रविदास वाणी ग्रन्थ' पृष्ठ २३)

बनारस की प्रसिद्ध गणिका "पिंगुला" के लिए और उसके निस्तकरण का कारण केवल नाम स्मरण मात्र था। अपने तोते को 'राम नाम', 'शिवदत्त दाता' या 'गुरुदत्त-दाता' पढ़ाने का परिणाम यह हुआ कि वह 'नाम स्मरण' करने मात्र से ही मुक्ति पाने की अधिकारिणी हो गई। श्री रविदास जी ने उसके प्रति कहा भी है कि :-

गनिका थी किस करमा जोग। पर पुरुषों संग रमती भोग।

निशिवासर दुस्करम कराहि। विनु द्वारे त्रिलोक पटाहि।।

दास्य-भाव (दासी:चेली); सखा-भाव; (सखी-साम्प्रदायिक, जैसे— चन्द्रसखी आदि), वात्सल्य-भाव और माधुर्य-भाव की भक्ति नारियों के लिए श्रेष्ठ होती है; ध्यानादि नहीं। परमात्मा सच्ची आत्माओं वालों को ही सद्गति प्रदान करता है। प्रभु भक्ति के लिए :-

१- प्रीतम छवि नैनन बसी; पर छवि कहाँ समाय।

भरी सराय रहीम लखी; आप पथिक फिरि जाय।। - रहीम

२- प्रीति तो मेरे पीव की; बैठी पिंजर मांहि।

रोम रोम पिउ पिउ करे; दादू दूसर नांहि।। - दादू दयाल

३- कबीरा काजर रेख हू; अब तो दई ना जाय।

नैननि भीतर रमि रहा; दूजा कहाँ समाय।। - कबीर

नारियों के लिए सत-समागम में उपस्थित होने की अपेक्षा 'मानसी-पूजा' का करना ही अधिक श्रेयस्कर होता है। काजर, सुरमा, शृंगार-प्रसाधन और आभरण-धारण करके सत्संगों में जाना; उनके लिए शोभाकारी नहीं होता-क्योंकि सिद्धान्त सार में ऐसा कहा गया है कि :-

उत्तमा मानसी पूजा, ग्रन्थ पूजा च मध्यमा—

अधमा कल्पिता पूजा बाह्यकीत्व धमाधमा।।

श्रुतियाँ ऐसा कहकर कि "रसो वै सः। ब्रह्म वैरसः।" "आनन्दो ब्रह्मोति व्यजनात्॥" ब्रह्म रस रूप हैं और वह आनंद स्वरूप भी है। जिस आनंद अंग से हमारी-तुम्हारी अथवा नर-मादा की ब्रह्म सृष्टि करता है; उस अंग-रूप की पहिचान बिरले सन्त, महात्मा ही कर सकते हैं; साधारण नर-नारी नहीं कर सकते।

नारियों के लिए प्रथम प्रकार की 'मानसी पूजा' सबसे उत्तम होती हैं; क्योंकि शील-सन्तोष, गुणों से युक्त नारी अपने पति को परमात्मा का सच्चा स्वरूप मानकर, उसकी आज्ञा में चलती है। प्रायः ग्रन्थों का मंथन करना या विद्यालयीं-शिक्षाएँ प्राप्त करना, मध्यम प्रकार की भक्ति की प्रतीक मात्र है। कल्पित पूजा अर्थात् देवी-देवताओं, भूत-प्रेतों, काली-कात्यायनी, चण्डी-दुर्गा और जड़वत् पीपल-तुलसी आदि की अर्चना नारियों के मन की धारणा को पूर्ण नहीं कर सकती है। रोग-पीड़ित नारियाँ सिर हिलाकर खेलें और कहें कि अमुक देवी मेरे सिर पर आई है-इससे अधिक अंधमता और क्या हो सकता है? ऐसा उपाक्रम करना कभी भी नारियों को सोचना तक नहीं चाहिए।

आत्माओं को ही सद्गति प्रदान करता है। अतीत काल के साधु-महात्मा; आजकल के 'काक-तीर्थी' साधु-महात्माओं के समान नहीं होते थे। जिस प्रकार नारियाँ अपने पति के आश्रयित रह कर आदर मान प्राप्त करती हैं; उसी प्रकार साधु-सन्त भी अपने ईश्वर के आश्रयित रहकर आदर-सम्मान पाते हैं। संत और कवियों ने ईश्वर को अपना पति और अपनी आत्मा को उसकी नारी के रूप में चित्रित किया है; जिसका अभिप्राय यह होता है कि नारियों को अपने स्वामी-पति के प्रति अटूट स्नेह रखना चाहिए। सन्त और कवियों की वाणियों में नारियों के प्रति लक्षित करते हुए कहा गया है:- देखिये कुछ उदाहरण:-

भारतीय सभ्यता और संस्कृति का सबसे ऊँचा सिद्धान्त 'अध्यात्मवाद' है; जिसको भारतीय नारियाँ, पाश्चात्य भौतिकवाद एवं बहुरूपियेपन की नकल न करती, हुई अपनाने का साहस नहीं करती हैं; क्योंकि अन्य की मंत्रणा-शक्ति और उत्साहया साहस बढ़ाने की अपेक्षा, अपनी आतमा की प्रेरणा-शक्ति और अपना आत्म-उत्साह, बल या साहस श्रेःष्ठ होता है। संतों के सत्संग-समागम से भी; यदि नारियाँ अपनी नैतिक व धार्मिक विचार-सरणी में सुधार न कर सके, तो यह

सत्संग-समागम का दोष नहीं है; अपितु नारियों का ही स्वतः दोष है- "यदि वे सत्संग-समागम से आदर्श न ग्रहण कर सके"। नैतिक सुधार के लिए छत्रशाल कवि का एक कवित्त यहाँ उद्धृत किया जा रहा है; जिसके अनुसार आचरण करने वाली नारियाँ; कभी भी उद्विग्न नहीं हो सकती हैं। कवित्त प्रस्तुत किया जा रहा है :- पढ़िये और गुणिये :-

जस सो न भूषण विचार सो न मंत्री कहूँ;
साहस सो शूरवीर ज्योतिष ले सगुन सो।
संयम सी औषध न विद्या से अटूट धन;
नेह ऐसो बन्धु औ दया सो पुन्य कौन सो॥
सील सो न हितुआ आलस्य सो न बेरी कहूँ;
अन्न सो न त्यारो न मीठो कछु नोन सो।
शोक ऐसी चोट है न भक्ति ऐसी ओट है;
न राज ऐसो जप है न तप और मौन है॥

नारियों! उपरोक्त कवित्त में बत्तीस बातों का वर्णन किया गया है। कवि ने नमक को मीठी वस्तु से भी अधिक मीठा बताया है। इस तथ्य के दृष्टान्त के लिए बुन्देलखण्ड में स्थित ओड़छा के नृपति जुझार सिंह ने अपने अनुज हरदौल को-कुछ द्वेषियों द्वारा उसकी रानी के साथ हरदौल का अनुचित अंग-संग सम्बन्ध स्थापित कर देने के कारण अपनी रानी द्वारा, विष का प्याला पिलवा दिया था। अपनी मातृतुल्य भौजाई के धर्म रक्षार्थ हरदौल ने उस विष के प्याले को अमृत समझ कर पान कर लिया था। उसकी भौजाई उसको पुत्रवत् समझती थी। बुन्देलखण्डी लोक-गीत हरदौल के चिर स्मरणीय करने के लिए गाये जाते हैं; जिनमें उसकी भौजाई का शील-स्वभाव और पतिव्रतापन का अर्थाभास् भी होता है। देखिये लोक-गीत का एक पद :-

इतनी रही भाभी सो प्रीत। जितनी सब दुनिया की रीत॥
तुमने करी न कछु अनरीत; जैसी उने निबाही लाल ऊँसई सबैं निभइयो॥

सारांश यह है कि कलियुगीन "काकतीर्थी" कहलाने वाले साधु-महात्माओं के पाखण्ड पूर्ण सत्संग-समागमों में जा-जाकर नारियाँ अपने शील-स्वभाव, आचरण और सद्व्यवहार की रक्षा करें।

पंचम पटल

नारी चरित्र

भर्तृहरि ने नारी के चरित्र और पुरुष के भाग्य के प्रति कहा है :—

"नारी चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं, देवोऽपि न जानाति कुतो मनुष्यः।

अर्थात् नारी चरित्र और पुरुष के भाग्य की गति-विधि को देवता भी नहीं जान सकता है; तब भला मनुष्य मात्र उनको जानने में कैसे सामर्थ्यवान् हो सकता है ? नहीं जान सकता !!

पुराण-इतिहास सम्मत कथावृन्तों के आधार पर सूर्य, चन्द्र और अग्नि आदि वंशों की वंशावलियो का क्रमिक नामांकन नहीं प्राप्त होता है; जिससे स्रोतों और प्रामाणकताओं का सत्यान्वेषण किया जा सके। पुनरपि चन्द्रवंशीय एक राजा धर्माश्व के दो जुड़वा सन्तनें अहिल्या और दिवोदास भाई-बहिन हुए। गौतम ऋषि के साथ अहिल्या का पाणिग्रहण हुआ। गौतम ऋषि के पुत्र शतानीक तथा उसके पुत्र शतानन्द हुए। शतानन्द के पुत्र सत्यधृति और उसके पुत्र शरदवान के पुत्र कृप तथा पुत्री कृपी का लालन-पालन हस्तिनापुर के नृपति शान्तनु ने किया।

शान्तनु के पिता सोमक के पिता सहदेव और पितामह सुदास थे। जिनके पिता मित्रेयु तथा पितामह दिवोदास, अहिल्या के छोटे भ्राता थे। द्वापर और त्रेता, दोनों युगों के सन्ध्यातन्तर से कुछ वर्षों पूर्व अयोध्या के सूर्य-वंशीय नृपति दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र ने अहिल्या का उद्धार अपनी चरण-रज से किया था। ऐसे लोक विश्रुत तथा लिखित इतिहास साक्षी है।

देवाधिदेव न तो साधारण व्यक्ति हुए हैं और न अहिल्या साधारण नारी हुई है; परन्तु उन दोनों को जो चरित-लांछन का गौत्तम ऋषि द्वारा अभिशाप लगा, उससे इन्द्र 'सहस्रभग' धारण करने वाला हुआ और अहिल्या भौंडे-कलुष कठोर पाषाण की मूर्ति बनकर प्रतिष्ठानपुर के निकटवर्त्तीय जंगल में पड़ी रही, जो त्रिवेणी के निकट का आँचलिक क्षेत्र था। इन्द्र के साथ मुर्ग बनकर चन्द्रमा ने दिया था और कहा जाता है कि गौतम ऋषि की भीगी धोती लगने के कारण चन्द्रमा को कलंक लगा—जो आज-तक भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

ऐसे घटित व्यैभिचारिक चरित्रों के परिणाम को सन्त रविदास जी ने, कथन की संक्षिप्त-शैली के द्वारा अभिव्यक्त किया है, देखिये :–

गोतम नारी उमापति स्वामी । सीसु धरनि सहस भग गामी ।
इन दूतन खलु बधु करि मारिओ । बड़ो निलाजु अजहू नहीं हारिओ ।।

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी पृष्ठ ७१०

भर्तृहरि ने अपनी नारी 'पिङ्गला-पटरानी' के असद्व्यवहार को जानकर ही उज्जयिनी की राजधानी, 'सोलह रानियों और बारह कन्याओं सहित' त्याग कर, सन्यास धारण कर लिया था।

शिव से अभीष्ट वर प्राप्तकर्ता उसके सेवक भस्मासुर ने पार्वती के रूप लावण्य पर मुग्ध होकर, औढरदानी शिव से ही वरदान रूप में पार्वती को मांग लिया था। श्री विष्णु जी ने सुन्दर नारी का मोहनी वेश-धारण करके सति के सतित्व की रक्षा की थी। मदमस्त नृत्य करते हुए भस्मासुर केदार कंगण पहने हुए, अपने हाथ को सिर के ऊपर घुमाने से स्वयं भस्मीभूत हो गया और उमा के शील की रक्षा हुई।

दर्प-अभिमान, दम्भ और बलवर्धन के कारण शुंभ-निशुंभ दोनों असुरराज दुर्गा देवी को वरण करना चाहते थे और दुर्गा देवी ने ही उन राक्षस वीरों को रणभूमि में परास्त करके उनके अस्तित्व को मिटा दिया था, यहाँ उसके चरित्र की अलांछनता थी।

राजा प्रिथम की रानी मंझा ने दिसौटे या बनवास के समय अनेकों कष्ट उठाते हुए, अपने नारी-धर्म का परित्याग नहीं किया और गर्भवती-सीता के समान परित्यक्ता मंझा ने झाड़-झीड़ों में नल-नामक पुत्र को जन्म दिया। बाद में नल राजा हुए। उसकी धर्मपत्नी दमयन्ती ने राजा नल का साथ अपार कष्टों में भी दिया। राजा नल की बहिन के गले का नौलखा मुक्ताहार खुंटी के द्वारा निगले जाने; भूने हुए कबूतरों व तीतरों का गगन में उड़ारी भरने, राँधी हुई मच्छलियों का जल में कूद जाने और नल द्वारा दमयन्ती की आधी साड़ी फाड़कर, अन्यत्र कहीं चले जाने आदि जैसे महाकष्ट-कारक कारणों के होते हुए भी सति दमयन्ती ने अपने पतिव्रत-धर्म को नहीं छोड़ा।

सति अनसूया ने 'ब्रह्मा-विष्णु और शिव' तीनों देवों को बालक बनाकर पालने में झुलाये और नग्न होकर, उन्हें भोजन कराया तथा दुर्वासा को यह कह कर कि "उड़ जा री चिड़ियां, बैठ जा री चिड़िया, मर जा री चिड़ियां और जी जा री चिड़ियां" जैसे अभिशापी का मेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं डाल सकते हैं-ऐसा कहते हुए उसने दुर्वासा के निकृष्ट तपस्वीपन का उपहास किया। दुर्वासा द्वारा पूछा जाने पर, अनसूया ने उत्तर दिया था–"एक बार उसके पति

अत्रि ऋषि तीर्थाटनादि से भ्रमण करके थके-माँदे घर लौटे। उन्हें अधिक प्यास लगी हुई थी। उनके द्वारा मुझसे जल माँगे जाने पर; मैं ज्योंही तुरन्त जल का लौटा लेकर उनके निकट पहुंची; त्यों ही वे प्रगाढ़ निद्रा में सो गये और मैं सारी रात भर उनकी नींद टूटने के समय तक, उन्हीं के सिरहाने के निकट खड़ी रही। ज्यों ही उनकी नींद टूटी; त्यों ही मैंने उनको जल अर्पित कर दिया। कारण पूछा जानें पर, मैंने बताया कि न जाने मेरे पति की आंखें किस समय खुल जायें और वह उठते ही जल मांगे"—इस प्रकार अपने पति की एक रात्रि की सेवा का परिणाम मुझको सतित्व प्रदान कर रहा है और मेरे ऊपर तन्त्र-मंत्र या अभिशापों का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता है। इसी कारण मैं 'त्रिकालज्ञा' हूं। ऐसा सुनकर दुर्वासा जी ने उनकी भूरि:-भूरि: प्रशंसा की।

गोपियों के चीर हरण करने वाले श्रीकृष्णचन्द्र के रहस्यमय एवं गाथात्मक-ईश्वरीय-गुण सम्पन्न व्यक्तित्त्व को कौन नही जानता है कि उसने भरी कौरवों की सभा में; दुश्शासन द्वारा नंगी की जाती हुई द्रोपदी के अनन्त चीर बढ़ा दिये थे। अपनी लाज बच जाने पर द्रोपदी ने अपने पूर्व जन्म में किये गये लोमश ऋषि के प्रति उपकारों को स्मरण किया और पश्चाताप किया—उसने जैसे कि कहा था :—

दोहा :- जो मैं ऐसा जानती, सर्वस देती वार।
एकही चीर के कारणैं, बढ़ गए अनंत अपार॥

एक पौराणिक दृष्टान्त लिखकर प्रस्तुत करना और भी अच्छा समझ रहा हूं, जिससे नारियों का सौतिया-डाह समाप्त हो जाया करें, क्योंकि किसी नारी के पति द्वारा पुत्राभिलाषा के कारण पूर्व विवाहिता के अनुमोदन किये जाने पर भी, पुर्नविवाहिता के साथ उसका बैमनस्य एवं बैर-भाव होना स्वाभाविक है। यदि दोनों प्रकार की विवाहिता नारियों में पारस्परिक कलह-द्वेष न हो सके तो उन जैसी सुभग-सलौनी नारियाँ अन्यत्र कहीं नहीं मिलेंगी। सौतिया-डाह के निमित्त कारणों के एक-दो ज्वलन्त उदाहरण और भी प्रस्तुत किये जा रहे हैं :—

पौराणिक एवं प्रागैतिहासिक ग्रन्थों में ऐसा लिखा हुआ है : कि ब्रह्माजी ने अपने पुत्रों के रूप में स्वयं को चौदह अंशों में विभक्त किया। उनमें प्रजापति मरीचि ज्येष्ठ पुत्र हुए। उनके महातेजस्वी प्रजापति पुत्र कश्यप जी हुए; जिनके साथ, दक्ष प्रजापति की तेरह कन्याओं में से विनता और कद्रू उनकी भार्याएँ थीं। उन दोनों में अपने पुत्रों के प्रति पक्षपात करते हुए सौतिया-डाह उत्पन्न हुआ।

देवताओं के आदि पिता होने के कारण कश्यप जी का प्रजापतियों में श्रेष्ठतम स्थान प्राप्त हुआ। भगवान् नारायण के बारह रूप 'आदित्यों' में मार्तण्ड (सूर्य) प्रचण्ड और अत्यन्त तेजस्वान् पुत्र हुए। विश्वकर्मा की सुपुत्री संध्या का पाणिग्रहण मार्तण्ड के साथ हुआ। उस दम्पत्ति से यम और यमी (यमुना भी कहते हैं) दोनों जुड़वाँ बच्चे उत्पन्न हुए। देव शिल्पी विश्वकर्मा की वह कन्या, सूर्य के प्रचण्ड तेज को पुनः सहन न कर सकी और अपनी छद्म-छाया को नारी के रूप में छोड़कर वह उत्तर कुरुक्षेत्र में जाकर तपोलीन हो गयी।

उसी भांति संज्ञा की छद्म-छाया से भी तार्तण्ड-द्वारा दो संतति, पुत्र शनि और पुत्री तपती हुई। एक बार यम ने अपनी सौतेली मां के सौतिया-डाह के व्यवहार को जानकर उसका अपमान कर दिया। छाया ने उसे प्रेतों का राजा बनने का अभिशाप दे दिया। इस अभिशाप के परिहार के लिए सूर्य ने अपने यम पुत्र को प्राणियों के द्वारा किये गये धर्माधर्मों का निर्णायक बनाकर, उसको यमपुरी का अधिशासता बना दिया।

उपरोक्त वस्तु स्थिति के प्रति ज्ञान हो जाने के पश्चात् मार्तण्ड ने, उत्तर कुरुक्षेत्र में जाकर, अश्वी-रूप धारण करने वाली संज्ञा में उग्र-गर्भाधान का सिंचन किया। परिणाम स्वरूप सन्ध्या के गर्भाधान में स्थित अव्यक्त रूप प्राण और अपान वायु, दोनों ही व्यक्त होकर अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति, द्वितीया तिथि को देवताओं के रूप में हुई और उन्होंने देवभाग पाने, सोमरस पीने, आयुर्वेद में पारंगत होने और देवताओं के तुल्य पूजित होने का ब्रह्मा जी से वर प्राप्त किया। औषध-भिषज् करने के कारण अश्विनी कुमारों को देवताओं ने अछूत संज्ञक कहा और बाद में वे देव कोटि में गिने गये।

सौतिया-डाह करना नारियों के लिए अशोभनीय होता है। गृहस्थाश्रम का पालन करते हुए जो बन्ध्या नारी अपनी सौत के पुत्रों-पुत्रियों को अपनी 'ही सन्तानें समझती हैं; वे सदा सुखी होती हुई स्वर्ग-गामिनी होती हैं। ऐसी नारियाँ कथित पहेली के दुष्परिणामों को स्वरण करती रहे, तो उनके उरःस्थल में सौतिया-डाह और मनःद्वेष ही कभी नहीं उमड़ सकेगा।

सासु-बहु में प्रायः मन-मुटाव, कलह-द्वेष और लड़ना-झगड़ना; जिस कारण से हुआ करता है—वह कारण कहा जाता है; जिसको ऋषि दुर्वासा जी का अभिशाप दिया हुआ कहा जाता है। यदि सासु-बहु में कभी भी मनस्ताप या द्वेष होने से कोई प्रस्तुत कारण बन जाय-तो सासु को भी और बहु को भी, यही विचारना चाहिए कि कलह-झगड़ों का कारण महर्षि-दुर्वासा जी का दिया गया सासु और बहु के प्रति अमिट अभिशाप है। ऐसी विचारणा करके

'वे' सासु-बहु दोनों परस्पर डाह-जलन, द्वेष, ईर्ष्या, अपमान, अपकार और लड़ाई-झगडे करने का अपकर्म न करे और दुर्वासा जी के अभिशाप को सदा ही स्मरण करती रहें।

श्रृंगार-रस के कवियों-महाकवियों ने नारी के विविध प्रकार के भेद-विभेद करके उनके चारु-चरित्र को भर्त्सना के गर्त में उडेला है। बार-बनिता नवौढ़ा, नव युवती, अभिसारिका और न जानें; उनके भेद-प्रभेद करते हुए, उन्हें केवल विलासिता की ही एक वस्तु मान कर—वे उनके प्रति क्या-क्या और कैसे-कैसे कविता छन्दों का श्री गणेश कर गये हैं। किसी कवि ने नारी के चरित्र की कैसी भर्त्सना की है–

सोरठा :- रस बिनु कौरे आम; रस बिनु कौरे आम सब।
रस बिनु नारि ललाम; राति न पिय बिनु कट सकै॥

प्रथम प्रसव-अवस्था में उत्पन्न पुत्र की अपेक्षा पुत्री का जन्म-धारण करना; एक मात्र अशुभ लक्षण-सा मान लिया जाता है। सासु-श्वसुर, बहु को "कमबख्त" तक कह डालते हैं। लड़के-लड़की का उत्पन्न होना एक ईश्वरीय प्रताप है—इसमें प्रसवा-नारी का कौन-सा दोष होता है? लड़की की शादी की चिंता पहले ही लोग करने लगते हैं और यह नहीं सोचते कि समयानुसार सभी लडकियों की विवाह-शादियां, ज्यों-त्यों करके हो ही जाया करती हैं। 'दान विधि समान' भी हो ही जाया करता है; पुनरपि यदि सब गृहस्थी ऐसा सोचें कि :-

'भारतीय समाज की सभ्यता और संस्कृति में विवाह एक पावन एवं धार्मिक कृत्यकार्य का सद्व्यवहार जनित संस्कार है। बालिकाओं के प्रति दुराचरण की शंकाओं का निवारण करना, उनको यथा समय प्राप्त व्यवहारी (विवाह-योग्य) होते ही, प्राप्त व्यवहार योग्य वर को संस्कार विधि द्वारा अर्पित कर दिया जाय। दहेज लेने और देने की 'कुप्रथा' को न पनपने देने का पुनीत कर्त्तव्य प्रत्येक गृहस्थी के लिए निभाने योग्य होना चाहिए।

प्रसन्नता पूर्वक दान-दहेज लेने-देने वालों में पारस्परिक प्रेम-मिलाप बना रहता है और ऐसा करने से उनकी बेटियां पराये घर जाकर भी सुखी-सम्पन्न रहा करती हैं। विवाह-विच्छेद, वधु का अपघात और कुल-मर्यादा का अपमान 'दान विधि-समान' देने-लेने से नहीं हुआ करता है। शोषित और पीडित नारियां जब अपनी ससुराल से अपने 'मयके' पहुंचकर, अपनी व्यथा अपने माता-पिता या भाई-बन्धुओं को सुनाती हैं; तब किस पुत्रीवान् का हृदय ग्लानि से नहीं भरता है।

अहा! सोचनीय बातें तो ये हैं—प्रत्येक गृहस्थी अपनी लाडली बेटियों

को उसकी ससुराल ही पुनः पुनः ढकेल दिया करते हैं और अतिशःय दुःख प्राप्ता ऐसी बेटियां, घर से बाहर निकल कर आत्महत्या, वैश्यावृत्ति, परपुरुष-चयन और अन्य आश्रःय ढूंढ लिया करती हैं। 'इस जग में दो भले; एक बेटी एक बैल। बांह पकड़कर कर दिये; परदेशी की गैल ।।" वाली उक्ति के अनुसार किसी भी गृहस्थी को अपनी लाड़ली बेटी को अयोग्य वर के साथ नहीं ब्याहना चाहिए; अपितु कन्या योग्य वर के साथ ही; उसको यथा योग्य दान-दहेज देकर पाणिग्रहण जैसी संस्कार-विधियों द्वारा; विवाहित कर देना चाहिए। ऐसी परिपाठी अपनाये रखने में ही गृहस्थ को श्रेःय मिलेगा।

नारी चरित्र को लांछित करने की दृष्टि से यह लेख प्रस्तुत नहीं किया गया है; अपितु उनके चारित्रिक-गुणों को उभारने और दुराचरण सम्बन्धी अविनीत स्वभावों को सुधारने के लिए सांकेतिक ढंग से खेलनी-बद्ध किया गया है।

पौथी, पुस्तकों और धर्म-शास्त्रों आदि के वर्ण्य-विषयों में चाहे आस्तिक भावों से या नास्तिक विचारों से, उनमें चाहे कितनी भी अच्छी उक्ति-वैचित्र्यता प्रकट की गई हो और चाहे कितने ही शब्द सौष्ठव, वाणी-माधुर्य तथा कविता-कला की मृदुल-मधुर-रसपूर्ण चित्र-विचित्र कृत्रिभता प्रकट की गई हो; बिना भगवन्नाम के काव्य गुण-सम्पन्न निबन्धित सभी ग्रंथ-विशेषों को विज्ञ, पंडित, भक्त और गुणी ज्ञानी 'काक-तीर्थ' कहते है। 'काक-तीर्थ' कहने का स्पष्ट अभिप्रायः इस प्रकार समझाया जा सकता है,—जिस प्रकार बिष्ठा को खाने के उद्देश्य से कौएँ, उसमें अपनी चोंच पहले मारा करते हैं और तत्पश्चात् उसको खाया करते हैं। कौओं को कपूर चुगाने से भी-उनके स्वभाव की गति कदापि भी नहीं बदल सकती है। कौओं के समान मलीन-मन वाले, विषय रसों के भोगी, ईश्वर के अस्तित्त्व को नकारा करने वाले और कुत्सित विचारों से भरे हुए साहित्यों को पढ़ने वाले लोगों का मन, उनकी आन्तरिक भावनाओं एवं कामनाओं के अनुरूप लिखित विषय में रमता है। कलहँसों, बड़हंसों और राजहंसों का मन जैसे मानसरोवर में विहरण करने में रमता है; वैसे ही परम भक्तों, श्रेःष्ठ नर-नारियों तथा परमहँसों का मन भगवन्नाम से युक्त सद्ग्रंथों को पढ़कर उनके रस परिपाक में, अपने मन को ज्ञान-गंगा में अवगाहन कराते हुए, रमण किया करता है। राजहँसों के समान परमहँस भागवतों का मन भगवन्नाम रहित ग्रन्थ-शास्त्रों के पठन-पाठन और श्रवण-निदिध्यासन में नहीं रमता; चाहे वे काव्यालंकरादि गुणों से युक्त ही क्यों न हो। अश्लील-काव्यों की ओर उनका तो ध्यान भी नहीं देते।

भगवद्गुण-नाम से पूर्ण वाणी या कविता को साधु-महात्मा, गुणी-ज्ञानी

और भक्त-भक्तिन बड़े प्रेम से सुनते हैं। सदशास्त्रों के अध्ययन करने से अमोघदर्शी, त्रिकालदर्शी और आत्मदर्शी ऋषि-महात्माओं ने; जो आदर मान प्राप्त किया है, उसके पीछे उनका स्वयं का सद्व्यवहार, आचार-विचार और चारित्रिक गुण छिपा हुआ होता है। उच्छृंखलता पूर्ण दुर्गुणों का वे प्रथम ही दमन किया करते है और सतत् ईश-भक्ति में अपने मानसों को रमाया करते हैं। उनके नामों की गाथाएं आज हम लोग गाते हैं, जिसका एक मात्र कारण यह है कि उन पूर्वाचार्यों पर परमात्मा की असीम कृपा हुई है; जिससे उनके नाम संसार में उजागर हुए हैं, तथा वे आज भी चिरस्मरणीय हैं।

भगवान् के नाम, गुण और रूप-निरूपण के प्रति जिस किसी के मन में प्रेम की पराकष्ठा न हो, उसको भक्ति का भेद नहीं लगता और न उनको बताना ही चाहिए। भक्ति साधक सर्व प्रथम अपने गुरु की सेवा-शुश्रुषा करता है। तदन्तर वह अपने गुरु की दया का भाजन होता है। कृपापात्र होकर वह अपने गुरु के बताये हुए उपदेशों पर विश्वास और श्रद्धा करता है। अटल विश्वास और अचल श्रद्धा से शब्द, वाणी, पद, कीर्तन और भजनादि का 'पावन मना' होकर श्रवण करता है। ऐसा श्रवण किये जाने पर, उस भक्त के मन में अपने गुरु, पूर्वाचार्यो; देवी-देवताओं और भगवान् के प्रति सच्चा हार्दिक प्रेम उमड़ता है। प्रेम में लिप्त रहता हुआ, वह अपने आत्मा और परमात्मा के स्वरूप का चिदाभास करता है। चिदाभास हो जाने के उपरान्त, वह आत्मानन्द या ब्रह्मानन्द की प्राप्ति करता है। ऐसी प्राप्ति हो जाने के उपरान्त, वह अपनी आत्मा में 'अहं ब्रह्मास्मि' होने की स्फूरणा अनुभव करता है। ऐसी स्फूरणा के जागृत हो जाने पर आत्म-धर्म या परमात्म-पद में निष्ठा रखने लगता है। ऐसी निष्ठता के कारण, वह अपने अभ्यन्तर में, ईश्वर के तुल्य सद्गुणों का प्राक्कट्य करना चाहता है और तत्पश्चात् कैवल्य-पद की आशा रखते हुए, वह जीवन्मुक्त हो जाया करता है। ऋद्धि-सिद्धि और तन्त्र-मंत्र आदि की वह उपेक्षा करता है तथा 'आत्मवत् सर्वभूतहित' में रत हो जाया करता है।

चाहे कोई आस्तिक रहा हो अथवा नास्तिक रहा हो—ऐसे पुरुषों के पीछे चलने वाली नारियों के प्रति न 'उन्हें' 'आस्तिका' कहा गया है और न 'नास्तिका' ही कहा गया है। छोटी सी बालिका भी अपने भाई-बन्धुओं के सुखद जीवन के प्रति अज्ञात परम सत्ता से प्रार्थनाएँ किया करती हैं। नवयौवन प्राप्त सती-साध्वी या पतिव्रता नारियाँ अपने पति को परमेश्वर का स्वरूप माना करती हैं। प्रौढा-वृद्धाएँ अपने बेटों-पोतों के लिए शुभकामनाएँ रखते हुए भगवान् को आशीर्वाद दिया करती हैं। काक तीर्थ कहे जाने वाले

काव्य-शास्त्रों के विषय के प्रति, चाहे नारियाँ कुछ भी न जानती हों, परन्तु भक्तों एवं हरि-भक्ति करने वालों के प्रति वे अटल रूप से विश्वास किया करती हैं। ईश्वर का अस्तित्त्व है, या नहीं-ऐसी वाद-विवादित उलझनों की रीति-नीति उन्हें कभी नहीं भाती। इसी कारण नारियाँ पुरुषों की अपेक्षा ईश्वर के प्रति अटल विश्वासिनी होती हैं; चाहे वे नाम-रटन के अतिरिक्त कुछ भी न जानती हो।

संगति का मानव जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। जो व्यक्ति अच्छी संगति में रहता है, वह अच्छे व्यक्तियों से बहुत सी बातें सीखता है। बुद्धि की जड़ता को हरण करती है, वाणी में सत्य का सेचन करती है, मान और सम्मान को बढ़ाती है, पाप को दूर करती है, सत्संगति कहो संसार में क्या नहीं करती है! व्यक्ति को विनम्र बना कर सभी के साथ प्रेम-पूर्वक व्यवहार करना सीखाकर महान् बनाती है। पंजाबी में प्रचलित लोकोक्ति है :

फल नीमियां रुखां नू लगदे, सिंबला दा मान न करीं ।।

गृहस्थों को बालिकाओं को पितृ-गृह त्यागते समय शिक्षा देनी चाहिये कि 'पुत्री ! पति के घर में जाकर गुरुओ व सासु श्वसुर की सेवा करना, तिरस्कृत होने पर भी क्रोध के कारण पति के प्रतिकूल न जाना, छोटों के प्रति उदार रहना, और अपने भाग्य पर गर्व न करना। इस प्रकार आचरण करने वाली गृहस्वामिनी का पद प्राप्त करती हैं, तथा इसके विपरीत आचरण करने वाली कुल के लिए अभिशाप होती हैं। कोई भी आचरण ऐसा नहीं करना चाहिए जो मर्यादाओं के विपरीत हो, क्योंकि 'गया मान न आय !' कहा भी है :-

मदिरा मानत है जगत दूध कलानिन हाथ।

अगर शराब बेचने वाली स्त्री के हाथ में दूध भी हो तो भी लोग उसे मदिरा ही कहेंगे।

इसी भाँति मानव का जीवन दूध और मदिरा दोनों के समान, एक ओर तो दूध की भाँति शुद्ध-सात्त्विक होता है और दूसरी ओर मदिरा (सुरा) की भाँति मदमानें और बौराने वाला होता है। इसीलिए नारियों को अपने शुद्ध-सात्त्विक जीवन को शुद्ध-स्फटिक की भाँति शुद्ध और पवित्र ही बनाये रखना चाहिए। चंचल मन की वृत्तियों को रोकना भी अत्यन्त शोभनीय होता है; क्योंकि चंचल मन के प्रति कहा गया है कि :-

मन के मते न चालिये; मन के मते अनेक।
ले डूबै मंझधार में; बली लगै नहिं टेक ।।

षष्टम पटल

बाल विवाहिता में भक्ति-भावना

सुव्रता, कुमारी! अनिशा,—बाल-विवाहिता औरतों की करुण कहानियाँ तुम श्रवण करती ही रहनी हो। घर पर विवाह के योग्य लड़कियाँ बैठी हुई हैं, ऐसा भी कहते हुए, बहुत से निर्धनों एवं दहेज-प्रथा से घबराये हुए तथा दहेज अधिकाँश धन के रूप में न दिये जाने के कारण, परित्यक्ता नव-युवतियों-रूप-गुण आदि से सम्पन्न, आँशू बहाती हुई, अपने माता-पिता, भाई-बन्धु तथा अभिभावकों के साथ उन्मना सी नारियों की करुण कहानी तुम सुनती ही रहती हो। लौ-तो फिर हम तुम्हें, अपने अनुभव-जन्य विचारों का दिग्दर्शन, तुम्हारे हितार्थ प्रकट कर ही देते हैं।

सुशीला-अमीशा! तुम्हारे, इस आश्रम एवं श्री रविदास-मन्दिर पर, आगमन से पूर्व-एक अमुक-नामा बाल-विवाहिता का आगमन हुआ था। उसका समस्त परिचयात्मक विवरण, पर जाति के डर और लोक निन्दा के भय के कारण लिखकर नहीं बताया जा सकता है। सांकेतिक भाषा में, जैसा कि तुम्हें विदित हो ही चुका है, उसके व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में लिखे दे रहा हूँ।

तुम्हारे आगमन से पूर्व ही, इस आश्रम के आँगन में पूर्व-आश्रिता अमुक की अनुनय-विनय के कारण स्वरूप, इस पुस्तक की पाण्डूलिपि के लिखित प्रारूप नारी-मंगल' नामक पुस्तिका को संशोधित व परिवर्द्धित (एवं प्रकाशित) आकार-प्रकार को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया गया होता। विषैले कीड़े की दंस गति के कारण, अपना स्वास्थ्य ऐसा न करा सका है। इस पुस्तिका का लिखित प्रारूप –

तत्काल दिवस शनिवार, ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष, दशहरा शुभ पर्व, गंगा-स्नान का शुभ-अवसर तथा उत्तर फाल्गुन नक्षत्र के उदित होने, शितभिष् योग के लगने एवं कन्या-राशि के चन्द्रमा के प्रकाशवान् रहने के कारण, एक शुभ समय की प्राप्ति पर, इस पुस्तिका की पाण्डूलिपि पूर्णतः तैयार हो गई थी। विक्रम सम्वत

२०४७ तदनुसार २ जून सन् १९९० ईस्वी अथवा राष्ट्रीय सम्वत् शाके १९१२ वर्ष को इस पुस्तिका का आद्यन्त आंकलन-संकलन करके मुद्रण के हेतु इसका एक मात्र प्रारूप तैयार कर दिया गया था। उसके भाग्य की विडम्बना के कारण अब यह तुम्हारे भावी-भाग्य के निमित्त प्रकाशन-संस्थान को समर्पित की जा रही है।

अनिशा ! अमुक नाम्ना और तुम्हारे में केवल इतना ही अंतर परिलक्षित होता है कि वह बाल-विवाहिता नारी थी और तुम अविवाहिता नव-यौवना कन्या-कुंवारी हो। अपने भक्ति-साधना के समग्र जीवन-प्रवाह में मैंने, संत शिरोमणि सद्गुरुदेव श्री रविदास जी महाराज के जन्म-दिवस अर्थात् माघ-मास की पूर्णिमा के शुभ अबसर पर (माघ पूर्णिमा सं० २०४६ वि० को सत्संग तथा भण्डारे के समायोजनों के समय अपार भीड़ के सम्मुख) सर्व प्रथम, नारी-वर्ग में से, अमुक नाम्ना को परम-शिष्या मान कर दीक्षा दी थी और उसने मन्दिर आश्रम पर ही रह कर जीवन-पर्यन्त तपोलीन व व्रतोपवासी रहने का आग्रह-पूर्वक निवेदन किया था। अस्तु, स्वीकृति प्रदान कर दी गई। आगे उसके भावी-भाग्य ने प्रबलता दिखाई।

अमुक नाम्नि के पारिवारिक सभी जन इस स्थान विशेष पर अमुक असहाय सी-से मिलने आया करते थे। उसके भजन-ध्यान या ब्रतोपासना में किसी भी प्रकार का व्यवधान नहीं डाला करते थे। उसकी भूरिः भूरिः प्रशसा भी किया करते थे, परन्तु जिसके साथ वह विवाहिता थी, न जानें वह उजवक व उदण्ड, उसके दस-पन्द्रह दिन शेष रहे ब्रतोपासना के समय भण्डारे से पूर्व ही, उसको बहकार कर (उसके परिजनों सहित) ले गया और वह आज तक इस स्थान पर नहीं आ सकी। उसके स्थान पर तुम्हारा आगमन रुग्णावस्था में हुआ। ऐसी ईश्वरीय इच्छा है।

अपने तपोलीन-संयमशील एवं सद्व्यहार जनित, नित्य नैमित्तिक धर्म-कर्म करते हुए, उसको शास्त्रीय, ज्योतिष, त्रिकालज्ञ, और ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति हो गई थी, जिस कारण सभी परिचित तथा अपरिचित लोग उसकी सराहना करते थे। सत्संग, भण्डारों एवं विचार संगोष्ठियों में उसका 'मीरा' की भाँति आदर सत्कार होने लगा था। वह अपनी अमुक सहेली से बहुत अधिक स्नेह रखती थी, जो उसके सम-सामयिक यहाँ ब्रत कर रही थी।

उसके बड़े भ्राता जी ने हमको एक पत्र अमुक स्थान से लिख कर प्रेषित किया था, जिसमें लिखा था – 'आदरणीय गुरुदेव व सुपात्रा बहिन अमुक-आप

दोनों को मेरा शत्-शत् कोटि-कोटि करबद्ध प्रणाम स्वीकार हो। वृतान्त इस प्रकार है कि बहिन अमुक: आपके श्री गुरुदेव जी का कृपा-पत्र, मुझको प्राप्त हुआ था, वैसे तो माता जी ने आपकी दीक्षा-सम्बन्धी, सभी बातें मुझको बतला दी थीं, इसी कारण मन बड़ा प्रसन्न हुआ। शुभ सूचनार्थ, अभी पत्र लिख रहा हूं। आगे वह लिखते हैं --

हे बहिन ! आपने, अपने हृदय में जो भक्ति-भावना धारण की है, अत्यन्त खुशी की बात है -- मैं हमेशा ईश्वर-परमात्मा से यही प्रार्थना करता रहूंगा कि आपकी भक्ति-भावना सद्गुरुदेव की शरण और उनकी सेवा में (रत) रहते हुए सदैव अमर रहे। देखिये बहिन संसार में कुछ भी तो नहीं है—सब असार है। संसार एक झूठे मोह का वन्धन है। यह स्वप्न वत है। संसार में रहकर काम-क्रोध मद्-लोभ और मोह का त्याग करते हुए ही, ईश्वर की प्राप्ति कर लेना ही सार और सच्चा धर्म-कर्म है। बहिन ! ध्रुव जी ने बाल्यपन में ही तपस्या की थी और ईश्वर को प्राप्त कर लिया था। प्रहलादादि ने कितने संकट सहन किये थे ? रैदास-साहिब की शिष्या मीरा ने कितने कष्ट और अपमान सहें थे ? तुम्हें भी ऐसे ही मार्ग का अनुगमन करना श्रेष्ठ है; नहीं तो नाम उजागर नहीं होगा। वह आगे पुन: ऐसा लिखते हैं --

बहिन 'अमुक'। अपने मन से मोह को त्याग देना। सच्चे मन से ही ईश्वर की प्राप्ति होती है। जब कोई भी आदमी किसी काम को करता है, तो अनेक प्रकार की अड़चनें आती हैं, जिनको पार करना ही सफलता है। यही बात भक्ति साधना के प्रति कही जाती है। बहिन धर्म का सदा ध्यान रखना है और अपना लक्ष्य दिनोदिन पूरा करती रहो। बहिन हम लोग तो मूर्ख है, अज्ञान हैं, अवगुणी हैं, महापापी हैं और बहिन ! इस पत्र में मुझसे जो कोई गलती हुई हो तो हमको मूर्ख, अवगुणी और शठ ही समझ कर आप व श्री गुरुदेव जी क्षमा करना। हम आपसे बार-बार क्षमा माँगते हैं। बहिन ! हम लोगों का जीवन तो संघर्षमय है। हम, हमारे परिजन तथा हमारे सभी साथी-भाई लोग आपसे तथा सद्गुरुदेव जी, दोनों से आशीर्वाद मांगते हैं कि संघर्षों में भी हम विजय-लाभ प्राप्त कर सकें। शेष कुशल। जय संत श्री जगवीर जी महाराज --

आपका शुभ चिंतक भ्राता
(अमुक) कुमार ठाकुर
दिनांक १५—५—६०

हस्ताक्षर—
(अमुक) कुमार ठाकुर
१५—५—६०

सुलक्षणा अनीशा-अमुक का भाई चाहे अपनी प्रकृति में जिस प्रकार का रहा हो, जिसको मैंने पत्र प्राप्ति से पूर्व कभी नहीं देखा था, उसने तत्पश्चात् अपनी बहिन को मेरे सम्मुख ही बैठ कर, भक्ति-भावना की अच्छी-अच्छी प्रेरणाएँ प्रदान की थीं। भक्ति से विमुख करने और प्रतिषेधात्मक किसी भी प्रकार की बातें नहीं की थीं। हाँ-इतना अवश्य कहा था। मैं बहिन देवी का पुजारी हूं और आप गुरू कीं सेविका हो। देखें कौन विजयी हो। मैं तुम्हें आजमाऊंगा। आदि-आदि।

अमुक के जीवन आदि का परिचयात्मक विवरण दिखाना श्रेयः स्कर नहीं मानता हूं। हाँ अनीशा-यह जो उसका, दीक्षा से पन्द्रह दिन पूर्व, उसकी बहिन द्वारा खिंचवाया चित्र है, इससे उसकी सादगी, साधारण भव्य-आकृति और पूर्व स्मृति का परिवेश स्पष्ट दीख रहा है। दीक्षान्त समारोह के चार मास पश्चात् का यह दूसरा तपोलीना-व्रतोपवासी का आकृति-चित्र जो है, इसमें उसके तप-संयम, शोल-स्वभाव और नव यौवनावस्था का ईश्वरीय आभा युक्त साधारण वसनों से लिपटा हुआ पार्थिव देहात्मा झलक रहा है। अधिक कहने से क्या ? अस्तु !

अनीशा-अमुक का बाल-विवाह हो गया था। अपने विवाहित पति के साथ न जाने किन कारणों से उसका अपनी अट्ठारह वर्ष की आयु में या तो गृहस्थ की अभिरुचि न होने के कारण अथवा अन्य किसी और झगड़ों के कारण, मन-मुटाव हो गया था; जिस कारण, उसके भाई ने उसको व्रतादि पारण होने से पूर्व ही, उसको पुनः गृहस्थ में ढकेल दिया। उसके कथनानुसार, उसकी उजागरता कहाँ चली गई ? उसकी धार्मिक शिक्षा कहाँ विलीन हो गई और उसकी बुद्धि कहाँ कुंठित हो गई, जिसने उसके व्रतोपवास के पारण समय से कुछैक दिनों पूर्व ही उसको भक्ति से विमुख कर दिया।

अतः जाति वाद यदि नारियाँ तुम अपने हृदय में रखती है तो भगवान के भजन-ध्यान में विक्षेप अवश्य आ जायेगा और काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद् का संचार उनके मन की भावनाओं में अवश्य समाहित हो जायेगा। मीराबाई ने कुल परिबार, जाति, धर्म व कुल, मर्यादा, सभी का परित्याग करके, गुरु रविदास जी से ज्ञान प्राप्त किया था। उस जैसा नारी चरित्र अन्यत्र किसी भी नारी में नहीं समाहित हो सकता है।

पूजा-पद्धति तथा भक्ति के विधि-विधान को जाने बिना; ज्ञान का प्रकाश कभी नहीं हो सकता है। ज्ञान तथा गृहस्थ-सम्बन्धी मामलों में बहुत

अन्तर है। शौच और पवित्रता नारियों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यदि तुम सुसंस्कृता एवं सुशिक्षिता होंगी तो तुम्हारी सन्तति भी गुणज्ञ और विवेकशील होगी। नारियों का भूषण तो शील और सन्तोष का धारण करना मात्र है। अतएव

कलियुग में नारियों! तुम्ही धन्या हो, तुम्हीं स्वयं में देवी-रूपा हो और तुम्हीं अपने कुल-परिवार की एक मात्र लाज हो। तुम्हारी शिक्षा हेतु ही नारी मंगल पुस्तिका में विशेष निर्देशन दिये गये हैं, जिनको पढ़ते हुए तुम सभी लाभान्वित हो रही होंगी नारी शिक्षा के निमित्त यह पुस्तिका, अद्वितीय प्रकार की लिखी गई है, जिसके अध्ययन मात्र से छात्राओं तथा बालिकाओं एवं नव युवतियों व वृद्धाओं को गृह-विज्ञान से भी अलग धार्मिक शिक्षाएँ प्राप्त होंगीं।

इस पुस्तक में, जितनी धार्मिक-शिक्षाएँ लिखी गई हैं, वे सभी यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो एक मात्र सामाजिक शिक्षाएँ ही हैं। जाति, सम्प्रदाय वर्ग, वर्ण, कुल, परिवार ऊँच नीच, अभिजात्य-अनभिजात्य, कुलीन-कुचैल, सवर्ण-असवर्ण और भेद-अभेद जैसे करने वाले तुच्छ मानसिक-संवेगो रहित होकर नारियों के प्रति सद्भावों एवं सद्विचरों को ही लिखा गया है। अविवाहिता एवं गृहणी नारियों, जो नारी सुलभ-शिक्षाएँ मैंने अमुक-अमुक नामना या अनीशा को समझाई है, उनका सार-सारांश रूप में लिख कर, तुम्हारे सम्मुख प्रस्तुत किया है।

मैं नारियों के प्रति ऐसा तो कहने का अधिकारी अवश्य हो सकता हूं कि—

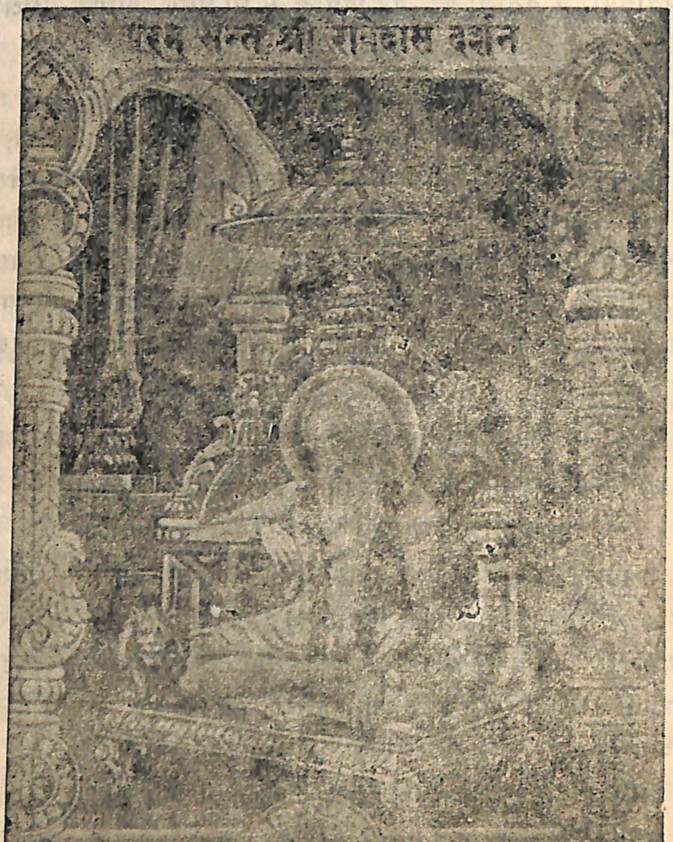
''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, तत्र रमन्ते देवताः।
यत्र नार्यः न पूज्यन्ते, न रमन्तेतत्र देवताः॥

अर्थात् हे नारियों। जिस घर में तुम्हारा मान-सम्मान नहीं होता है, उस घर से लक्ष्मी सहित सभी देवता तिरोहित हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त जिस घर में नारियों, तुम्हारी मान-मर्यादा का ध्यान रखते हुए-एक मात्र तुम्हारी या तुम्हारी कन्याओं (देवियों) की पूजा होती है; उस घर की श्रीवृद्धि होती है और सभी देव गण उस घर में आकर निवास करने लगते हैं।

अन्ततः हे नारियों, तुम्हीं से देवता उत्पन्न हुए हैं। तुम्हीं से दानव हुए हैं। ऐसा साध्वि और कुलटा में अन्तर होने के कारण होता है। तुम्हीं से सन्त महापुरुष हुए हैं और तुम्हीं से नराधम-असाधु हुए हैं। तुम्हीं से राम-कृष्ण हुए हैं—तुम्हीं से बुद्ध-महावोर हुए हैं। तुम्ही से अपाला-गार्गी हुई है और तुम्हीं से

सति-साध्वी सीता-सावित्री हुई है। एक मात्र तुम्हीं जगत की जननी प्रकृति रूपा हो। तुम्हीं अपने चरित्र-व्यवहार को सुधारने में संयमशीला और दक्षा हो। पुरुषों की अपेक्षा कृत तुम्हीं कोमलांगी हो, स्नेहमयी हो और वसुन्धरा से भी बहुमूल्य व्यक्तित्व वाली हो। तुम्हारी दयनीय दशा के प्रति हमारी ओर से और अधिक भाव निःसृत नहीं हो सकेंगे, जितना सुन्दर चित्रण, तुम्हारी दयनीयता के प्रति राष्ट्रीय कवि श्री मैथिली शरण गुप्त जी अपने यशोधरा नामक काव्य में लिख गये हैं, कि—

अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी ।
आँचल में है दूध ! और आँखों में पानी ।।



सन्त शिरोमणि सद्गुरुदेव श्री रविदास जी महाराज के पूर्ण ज्ञान के लिए 'सन्त रविदास माहात्म्य' लेखक की कृतिका अध्ययन करिये ।

सप्तम पटल

विवाह-प्रकरण एवं संस्कार

शास्त्रोक्त विधि-विधान

शास्त्रों में प्राचीन भारतीय-धर्म की पद्धति का समुचित रूप से विवरण मिलता है, जिनमें विवाह या पाणि ग्रहण-संस्कार, ईश्वरीय संस्कार जनित एक विधि है अर्थात् वर-वधू के पाणिग्रहण का लेख पहले ही विधाता या बेमाता लिख देती/देता, है या पुतला रच देती/देता है। अभिप्रायः यह है कि ब्रह्म और उसकी शक्ति माया के द्वारा वर-वधू के गठ-बन्धन का विधान पहले ही नर या मादा के भाग्य में लिख दिया जाता है और अमुक के साथ अमुक का पाणिग्रहण होना है। ऐसे ही आदि ज्योषिचार्यों ने अपने-अपने विचार प्रकट किए हैं।

बिवाह व्यवहार है

विवाह के दो प्रकार हैं : (1) वैद्य अर्थात् नियमानुसार और (2) अवैद्य अर्थात् अनुचित रूप से विवाह व्यवहार करना कानूनी-बन्धन के साथ सामाजिक रीति-नीति भी है, जिसमें विवाह-प्रथा पूर्व काल से ही समायोजित करने की परिपाठी चली आ रही है।

विवाह के प्रकार

आज का युग कलियुग नहीं कर युग है, जैसा करोगे वैसा भरोगे। जैसा राजा वैसी प्रजा होगी। बिना दण्ड-नीति के चाहे शासक कितना ही न्यायकारी क्यों न हो, प्रजा उचित आचरण नहीं करती है। घर बिगड़ा तो कुल बिगड़ा। कुल के बिगड़ने पर परिवार को कलंकित होना ही पड़ता है। कुल वंश के नाश का कारण भी होता है। जिस वर्ण या जाति विशेष में कर्म संकरतता और वर्ण संकरतता ये दोनों पनपती हैं तो उन कुलों-परिवारों की नारियाँ उदण्ड होकर चंचल बनने लगती हैं। ऐसा इतिहास साक्षी है।

विवाह आठ प्रकार के बताये गये हैं, जिसमें प्रथम चार वैद्य और शेष चार अवैद्य प्रकार के विवाह कहलाये गये हैं।

(1) ब्रह्म-विवाह – जिस विवाह में कन्या को अलंकृत करके फेरे या भाँवरी डालकर और अग्नि की साक्षी करके (हवन-दानादि) वर को अर्पित किया जाता है तथा वंश, गोत्र, सति और कुल मर्यादा बचाई जाती है—उसे ब्रह्म-विवाह कहा जाता है। उदाहरणार्थ राम ने सीता का पाणिग्रहण इसी विधि से किया था। शिव ने पार्वती के साथ ऐसा विवाह किया परन्तु श्रीकृष्ण चन्द्र ने ऐसा कोई विवाह नहीं किया। उसने वधू को भगाकर या छीन कर अपने घर ही विवाह संस्कार किये—जैसे रुक्मणि के साथ, ऐसा उनका व्यवहार था।

(२) प्राजापत्य-विवाह– जिस विवाह में वर-वधु एक साथ प्रणय-प्रेम पूर्वक मिलकर धर्म के आचरण की प्रतिज्ञा करते हुए बिवाह करते हैं, उसको प्राजापत्य-विवाह कहते हैं। कन्या पक्ष वाले, कन्या को अलकृत करके तथा गाय आदि दान करके, वर को सौंप देते हैं। यह दैव-विवाह से निकृष्ट होता है।

(३) आर्ष-विवाह – जिस विवाह में वर-पक्ष से कन्या-पक्ष वाले दो गायें लेकर कन्या दान करते हैं, वह आर्ष-विवाह कहलाता है। अनेक राजा-महाराजाओं ने निर्धन परिवार बालों की सुन्दर कन्याओं को बरण करके कन्या-पक्ष वालों को मालामाल कर दिया था—ऐसा भी इतिहास-पुराण साक्षीकरण करते हैं।

(४) दैव-विवाह—में कन्या-पक्ष वर को उसके घर जाकर दान-परिग्रह द्वारा स्वीकार करता हो और यज्ञ-हवन-वेदी पर विवाह संस्कार कर्ता या ऋत्विक के समक्ष बैठाकर कन्या-दान करता हो-वह दैव-विवाह कहलाता है। चारों वर्णों के दैव-विवाहों में अन्तर है। शूद्र वर्ण के विवाहों में ऋत्विक् ब्रह्मा, होता और अध्वर्यु बन कर चार ब्राह्मण नहीं बैठते, परन्तु वे लोग शाखोच्चार करते हैं, भाँवरी डालते हैं और वर पक्ष से कोई गायादि दान नहीं गृहण करते है।

(५) गन्धर्ब-विवाह - यह अवैद्य प्रकार का विवाह होता है। इसमें वर-कन्या अपने माता-पिता संरक्षक या बन्धु गणादि की स्वीकृति के बिना वैस्च्छा से परस्पर अपने को एक दूसरे के साथ अपना लेते हैं। आज कल उसी प्रकार के गान्धर्व-विवाह (Love Marriages) की प्रथा चल रही है। असवर्ण तथा सवर्ण का कोई भेद-भाव न रह कर अन्तर्जातीय-विवाह की प्रथा प्रमुख स्थान पाती जा रही है, जिसे हेय नहीं माना जा रहा है। एकान्तर जातियाँ या ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों में प्रथम विवाह का। कोई नियम-विधान का प्रतिषेध नहीं है।

(६) आसुर-विवाह -- जिसमें वर-कन्या को अथवा स्वयं वर या उसके पक्ष वाले कन्या को या उसके माता-पिता और भाई-बन्धु को धन-सम्पत्ति देकर कन्या अर्पण करता है, वह आसुर-विवाह कहलाता है। आज से बहुत पहले वणिक-ब्यापारियों के यहाँ वह रीति पनप रही थी और वे लोग कन्या पक्ष को सोने या चाँदी के सिक्कों से ऊँखल भर कर दिया करते थे। अब उस रीति का उल्टा प्रचलन हो गया है, जिसमें वर पक्ष को कन्यां-पक्ष वाले धन देकर ही कन्या-दान कर सकते हैं। यह दहेज प्रथा आसुरी-विवाह की विपरीत-रीति है।

(७) राक्षस-विवाह जिस विवाह में कन्या को बलात् ग्रहण किया जाता है अथवा उपधा या छल पूर्वक भगाया जाता है, वह राक्षस-विवाह कहलाता है। पृथ्वीराज ने संयोगिता को, श्रीकृष्ण ने राधा और रुक्मिणी आदि को और रावण ने मन्दोदरी को इसी प्रकार के विवाह से वरण किया था। परन्तु वाणासुर की कन्या ऊषा ने श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को और दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा ने श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब को अपने घर रखकर वरण किया था यह राक्षस विवाह का बिपरीत विवाह कहला येगा।

(८) पैशाच-विवाह - जिस विवाह में सोई हुई कन्या का अपहरण किया जाता हो, उन्मत्त करने वाले उपक्रमों के द्वारा उसको भगाया जाता हो या तंत्र-मंत्र करके उसको मोहन-शक्ति द्वारा अपहरण कर लिया जाता हो,—ऐसा बिवाह पैशाच कहलाता है।

(१) धर्म संगत विबाह उपरोक्त ब्राह्म आदि चार प्रकार के विबाहों को धर्म सगत माना गया है। न्याय रीति से ये चार प्रकार के विवाह बैद्य कहलाते हैं।

(२) अधर्म संगत विवाह—उपर्युक्त चार प्रकार के शेष बिवाह अबैध और अधर्म सगत कहलाते हैं।

समीक्षा: कलियुग का आविर्भाव शूद्र रूप में, श्री कृष्ण के राज्य काल में ही हो गया था। राजा परीक्षित से उसने सुरा, स्वर्ण और सुन्दरी में स्थान माँगा था। इसीलिए सुन्दरियों, कन्याओं तथा छात्राओं समझ लो यह कलियुग आपके व्यक्तित्व में समाया हुआ है। अपने पति-धर्म, अचरण शील, ब्यवहार और नैतिक चाल-चलन को मत बिगाड़ना महर्षि ब्यास जी ने भी श्री विष्णु पुराणोक्त विधि द्वारा, तुम्हें कलियुग में श्रेष्ठ बताया है। -- जैसे

श्लोक—निमग्नश्च समुत्थाय पुन: प्राह महामुनी: ।

योषितः साधु धन्यास्तास्ताभ्यो धन्यतरोऽस्तिक: ।।८।। षष्ट अंक २

महर्षि व्यास ने शूद्र तुम हो श्रेष्ठ हो तुम ही धन्य हो । यह कह कर पुन: उन्होंने सूर्य का स्तवक करते हुए, जल में डुबकी लगाई और जल से बाहर मुँह निकाल कर पुन: ऐसा उच्चारण किया कि कलियुग में नारियां ही श्रेष्ठ हैं, वेही धन्या और उनसे अधिक श्रेष्ठ कौन हो सकता है । अर्थात् कलियुग में नर से श्रेष्ठ सती और साध्वी नारियों को होना चाहिए । वे अपने शील-सन्तोष, सद्व्यबहार आचार-विचार और स्वभाव से सदैव ही पवित्र रहनी चाहिए । कहा भी है— पति-व्रता मैली भली, कुजाति कुचिल और कुरूपा ।

वर्ण-विभेद—कपिल, अरुण, पीत और कृष्ण वर्ण के आधार पर क्रमश: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों की स्वभाव और कर्म के आधार पर व्युत्पत्ति हुई है । सत्ययुग के समय आर्यक, कुरर, विदिश्य और भावी ये चार ही जातियाँ भारत वर्ष में निवसित थीं । इन्ही में से कुछैक जातीय लोग आर्यक बन गये और कुछैक अनर्याक बन गये । इस प्रकार भारतीय आदि समाज के दो वर्ग बने, जिन्हें उतरवर्ती काल में सवर्ण और असवर्ण की संख्या प्रदान की गई । अपने २ आश्रम धर्मों के अनुरूप कर्म करते हुए—दमी, शुष्मी, स्नेही और मन्देह इन्ही बर्णों को क्रभिक रूप से कहा जाता था । आर्य-वैदिक काल से अथवा मनु महाराज के समय से उपरोक्त चार वणों के नाम क्रमश: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र पड़ गये इन बर्णों के अन्तर्गत अन्तर्जातीय-विवाह शादी करने का भी निषेध किया गया है । लोभ और प्रतिलोभ विधियों से अनेक प्रकार की जातियों - उप जातियों ने जन्म लिया । उपदेश दिया जाता है कि कलियुग की कन्याओं, छात्रा-वालिकाओं अथवा नारियो आप विबाह-बिच्छेद को अच्छा मत समझो । विबाह विच्छेद तो तभी करना चाहिए – जब कि तुम्हारा पति –

श्लोक – नीचत्वं परदेशं या प्रसियतो राज किल्विषो ।

प्राणाभि हन्ता पतित स्त्याज्य: क्लीबोऽपि वा पति: ।।

कौ० अर्थ-शस्त्र धर्मत्थीय ३ अधि०

अर्थ – जो पुरुष अतिशय नीच प्रकृत्ति का हो, जो सदा प्रदेश में रहता हो जो राजद्रोह आदि के महा पाप का भागी हो, जो तुम्हारा प्राण घाती हो और

जो अपनी जाति अथवा अपने स्वधर्म-कर्म से पतित हो चुका हो तथा नपुन्सक हो तो ऐसे पति को त्यागना भी आप के लिए अहित कर नहीं।

दूसरा उपदेशात्मक कथन यह है कि उक्त-विवाह प्रकरण में स्वयं कन्याएँ जैसा विवाह करना चाहेगी, वैसा ही पसन्द करें ऐसा कहा है। कुलटा तथा पुंचली बनना बड़ा बुरा है। चरित्र-शीलता का परिचायक है। जिनका धर्म के प्रति ध्येय होता है, वे कर्म को भी धर्म के अनुसार ही निभाने का पयास करते हैं। एक ऐतिहासिक दृष्टान्त तुम्हारे सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है। हाँ आप नारियाँ ही नहीं नर भी भरत चक्रवर्ती सम्राट का नाम जानते ही हो। वह हस्तिनापुर नरेश महाराज दुष्यन्त के पुत्र थे तथा उनकी माता मैंनका सपसरा की कन्या थी जो कण्व-ऋषि के आश्रम पर परि पालित हुई। उसके यौवन समय की झाल उससे न संभल सकी और अपने ज्ञान-ध्यान को विस्मृत करके शकुन्तला दुष्यन्त के रूप-लावण्य पर मुग्ध होकर उसके साथ गन्धर्व विवाह कर बैठी। वस्तुत: दुष्यन्त से शकुन्तला ने गर्भ धारण किया था और तत्पश्चात् उसको बिस्मृत भी कर दिया था। पाँच वर्ष उपरान्त कण्व-ऋषि के आश्रम से दुष्यन्त अपने पुत्र भरत सहित शकुन्तला को अपने राज्य में ले आया था। भरत दुष्यन्त तथा शकुन्तला के औरस पुत्र थे। नहीं वह अपविद प्रकार का पुत्र था या कानीन प्रकार का पुत्र था।

स्पष्टी करण इस बात का करना है कि प्रथम-प्रणय (Five Stove) की आप छात्र-कन्याँएँ बातें ही मत सोचो। कुन्ती का कर्ण, मुरा का चन्द्रगुप्त मौर्य, और विधवा ब्राह्मणी का कानीन प्रकार का कनीर कौन सी महत्ता न पा सके? प्रणय प्रीति की प्रतीति का तो यही भावार्थ समझना चाहिए, परन्तु ऐसा मत करना – सस्कार विधि और माता-पिता की इच्छा को मत मना करना।

अष्टम पटल

साधनियाँ नारियाँ

जिस प्रकार साध्य का अपभ्रंश 'साध' पद है, उसी प्रकार साध्वी का 'साधनी' पद है। मराठी भाषा में तपस्वी साधु सन्तों की चेलियों को 'बाई जी' कहा जाता है और उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा आदि प्रान्तों में उनको दासी या साधणी' कहकर पुकारा जाता है। प्राय: अस्पृश्य जातियों के लोग ही सत्संगी साध कहलाते हैं और साधु-महात्माओं की चेलियां दासी और गृहस्थी वाणाधारियों की पत्नियां साधनी या साधड़ी कहलाती हैं। आदर मान के लिए साधना शब्द केवल गृहस्थी सत्संगी नारियों के लिए ही प्रयुक्त किया जाना औचित्य पूर्ण शब्द है और अविवाहिता बालिकाओं या क्वारी कन्याओं के लिए यह पद या शब्द कहना अच्छा नहीं। उनके लिए चेली या दासी कह कर पुकारना शोभाकारी लगता है। उनके लिए महाराजनी आदि शब्दों को तो कदापि भी प्रयुक्त नहीं करना चाहिए और जो महामूर्ख, ऐसा उच्चारण अपनी वाणी द्वारा करते भी हैं, वे पाप-दोष के भागी स्वयं होते हैं।

साध्य या साध शब्द मुण्डा, द्राविड़ प्राकृत, अपभ्रंश और डिंगल आदि भाषाओं में भी प्रयुक्त हुआ है; जिसका व्युत्पत्ति-स्थान एकमात्र 'साध्यगण' हैं। साध्यगणों से जो शिष्य या दास कहलाने की परम्परा चली है, उसका ऐतिहासिक मूल्य है। सूर्य पुराण के अनुसार –

साध्या विश्वा च संकल्पा मुहूर्त्ता ह्यरुन्धती।
मरुत्वती वसुर्भानुर्लम्ब जामीति ता दश।
धर्मस्य पत्नयत्त्वेतासां संततिरूच्यते।
साध्या वभूवः साध्यायां विश्वायां बिश्वदेवताः॥

सुरासुर सृष्टि-आदि कथन प्रष्ठ ११०-११

कथानक इस प्रकार है कि सर्ग के आदि में स्वयंभू भगवान ने अपने प्रजापति पुत्र दक्ष को सृष्टि उत्पन्न करने की आज्ञा प्रदान की। प्रजापति वीरणा की एक

कन्या असिक्नी से उसने साठ कन्याओं को उत्पन्न किया, जिनमें से दश प्रजापति ने धर्म के साथ विवाहित कर दी। उनदशों के नाम क्रमश: साध्या, विश्वा, संकल्पा, मुहूर्ता, अरुंधती, मरत्वती, वसु, भानु, लम्वा और जामी थे।

धर्म ने दश पत्नियों में से सबसे बड़ी जो साध्या थो उससे साध्यगणों को उत्पन्न किया और उससे छोटी जो विश्वा थी, उससे विश्वदेवता उत्पन्न किए।

दूसरा वृतान्त इस प्रकार है कि अगले जन्म में दक्ष प्रजापति प्राचेतस् होकर दक्ष प्रजापति ही कहलाये और उन्होंने सति के स्वयंवर में प्रणतों के आतितों का भंग करने वाले महेश्वर को यज्ञ में निमंत्रित नहीं किया था। विष्णु देव के साथ अन्य सभी देवों को बुलाया गया था, जिनमें आठ वसुगण, ग्यारह रुद्र-गण, बारह आदित्य, सात पितरगण उनंचास मरुद्गण तथा अनंत ऋषि-मुनि-सिद्ध-द्वैतय और अपार संख्यक साध्यगण भी निमंत्रित थे। ये सभी महाभाग नृप थे। गन्धर्व और किन्नरों का भी आगमन हुआ था। सूर्यपुराण में ऐसा भी प्रतिपादित है कि:-

देवा: सर्वे समाहता विष्णुना सह शंकर:।
आदित्या वसवो रुद्रा साध्याश्चैव मरुत्गण।।
ऋषियो मुनयश्च सिद्धा द्वतेया दानवाश्च ये।
राजानश्च महाभागा गन्धर्वा किन्नराश्तया।।

सूर्य पुराण श्लोक ४५-४६ पृष्ठ

दछेश्वर के द्वारा रचित 'सति-यज्ञ' में साध्यगणों का उपस्थित होना इस तथ्य की प्रतीति कराता है कि सनातन धर्म के साधु-महात्मा, साध्यगणों की परम्परा में आगे चल कर 'साध' कहलाये। आजकल 'साधो सम्प्रदाय', जिसे एक मात्र रविदासी साध और साधु महातमा चला रहे हैं—वह सन्तों के अनन्य मार्गों का एक सम्मिलित ज्ञाम का अखाड़ा है। इसके अनुयायियों को 'दास' कहा जाता है। साधु-महात्माओं के चेले या चेली को साध और साधनी कहा जाता है। अविवाहिता कुमारी लड़कियों को दासी या चेली कहा जाता है।

गौतम ऋषि की नारी अहिल्या को, किन्हीं शास्त्रों में 'अहिल्या बाई' कहा गया है और अहिल्या के भाता दिबोदास के नाम के साथ जो 'दास' पद जुड़ा हुआ है; उसकी व्युत्पत्ति स्मृति कारों ने इस प्रकार की है—

क्षत्रिय वर्ण के पुरुष की ब्राह्मण-वर्ण की नारी से जायमान पुत्र को सूत कहा जाता है और सूत से क्षत्रिय नारी से जो पुत्र उत्पन्न होता है—वह 'दास' कहलाता

है। इसी कारण व्यास के शिष्य लोमहर्षण को संभाषण करते हुए श्री बलराम जी ने नैमिषारण्य में को मार डाला था।

द्वापर के अन्तिम चरण से लेकर आजतक इतिहास बदलता चला आ रहा है। तेरहवीं शताब्दी में आकर अर्थात् भारत के उत्तरमध्य काल के प्रारम्भिक अन्तराल में शूद्रवर्णीय साधु समाजों के सन्तो-महात्माओं, साध्वी और साधनियों ने जो विधर्म के प्रति कार्य किया वह सराहनीय है। चौखामेला, राँका-बाँका, जनांवाई-नामदेव प्रभृति के नाम इतिहास के पृष्ठों से हटाये नहीं जा सकते हैं। तदन्तर भक्ति कालीन प्रेम-मार्गियों की अपेक्षा जनता के प्रिय ज्ञान-मार्गीय सन्त साधु-महात्मा गुरु रविदास, कबीरदास, चरणदास, सहजोवाई, दरियावाई और भी मीरा-कमाली; रूपाबाई आदि हुए। सभी सन्तों ने विधर्म के विद्रोह का डटकर विरोध किया था, जिनमें नाथ सम्प्रदाई शूद्रवर्णीय सांधु-समाज भी सम्मिलित था।

अब हम नारियों के हितार्थ और ज्ञानोपदेशात्म कुछ पद प्रस्तुत करना चाहेंगे, जिनके पठन या स्मरण मात्र से शिक्षित नारियाँ अपने धार्मिक क्षेत्र में दक्षता प्राप्त कर सके।

साधुओं के संग समागम की अभिलाषिणी, कबीर जी कीं पुत्री कमाली, अपने द्वार पर आये हुए साधुओं के आदर सम्मान के प्रति कहती है।

पद :— आज म्हारे अंगना में, साधुजन आये री ।। टेक ।।
हरियल गोबर अंगना लिपाये. मोतियन थाल भराये री ।। १ ।।
दण्ड कमन्डल तन मृगछाला, माथे पे तिलक लगाये री ।। २ ।।
भौ सागर में नाव पड़ो हमारी वाकों वे पार लगाये री ।। ३ ।।
कहती कमाली कबीरा जो बाली; जीवन फंद छुड़ाये री ।। ४ ।।

ऐसा कहा जाता है कि कबीरदास ने कमाली को जिन्दा कर लिया था। इस सम्बन्ध में-आत्मा, इन्द्रियों एवं प्रकृतियों के रहस्यात्मक एवं योगात्मक ज्ञान का चित्रण करती हुई, वह कहती है कि।

पद:- हँसा निकल गया, मैं नाहि लड़ी थी ।।टक।।
पाँच सहेली मै संग में लेली, पाँचों में मै अकेली खड़ी थी ।। १ ।।
नौ दरबाजे बन्द कर लीने, दशवीं मोरी खुली जो पड़ी थी ।। २ ।।
नहि मै बोली न मै चाल्ली, ओढ़ दुपट्टा अकेली पड़ी थी ।। ३ ।।

कहती कुमाली कबीरा जी की बाली, व्याही से तो मैं क्वांरी भली थी ।।४।।

साध-संगत की अभिलाषिणी नारियों-देखा कमाली के शब्दों की लड़ियों को, जिनमें योग मार्गी रहस्यों को उसने सूक्ष्म-परिवेक्षण में कथ डाला । चन्द्रसखी की वाणी में प्रेम और माधुर्य का भाव एवं श्री कृष्ण के प्रति, भक्ति प्रेम क रहस्य उसने अपने सरल शब्दों में बड़े मार्मिक ढ़ंग से भर दिया है—देखिये—

पद—कृष्ण आया पाहवना ! आज म्हारै आनन्द भयो री ।। टेक ।।

फूलों को सैज म्हारैं, फूलों का विछौवना ।
फूली फूली मैं फिरूँ, कृष्ण जी का आवना ।। १ ।।
मथुरा में कस पछारे, लंका मारे राबना ।
बलि के द्वारे हरिजी ने, रूप धार्या बावना ।। २ ।।
मात यशोदा यूं उठ बोली, कहाँ गया कान्हा बावरा ।
कालीदेह में कूद गया, नाग नाथ के लावना ।। ३ ।।
चन्द्रसखो हरिलीला गावैं, हरिचरणों चित लावना ।
छैल छबिला कृष्ण कान्हां, मेरे मन को भावना ।। ४ ।।

उपरोक्त पद में अलंकारिकता स्पष्ट दीख पड़ती है और पिंगल शास्त्र की दृष्टि से यह गेय पद बड़ा सुहावना है । इसमें श्रीकृष्ण जी की लीलाओं को कथा-तन्त्र शैली के रूप में, कितने सुन्दर ढग से इतिवृत्त किया गया है ? चन्द्रसखी प्रेम-मार्गीय नारी सन्तों में एक प्रतिभाशाली व्यक्तित्व सम्पन्न महिला रही है ।

प्रसिद्ध मीरावाई के पद तो वहुत रसीले हैं, जिनके समान अन्य भक्तिनियों के पद नहीं । उनके विषय में प्रायः सभी लोग जानते हैं । असवर्ण जातीय अपने सदगुरू श्री रविदास जी के प्रति, उसने अपनी आस्था को बनाये रखा और गुरू-कृपा से उसने सभी संकट-झझट सहन किये। उसके एक पद में अपने सद्गुरू के चरणाविन्दों की महत्ता इस प्रकार बताई गई है—

पद – राणा जी जहर दियो सो जानी ।

निज हरि मेरो नाम निवेरयो, छर्यो दूध अरु पानी ।
जब लग कंचन कसियत नाहीं, होत न बाहिर बानी ।।
श्वपच भक्ति वारौं तन मन जे: हौं हरि हाथ बिकानी ।।
मीरा प्रभु गिरिधर भजिबे को, संत चरण लपटानी ।।

सहजो बाई रचित सहजो प्रकाश एक उत्तम प्रकार की पुस्तक हैं, जिसको पढ़ना नारियों के लिए अत्यन्त लाभकारी है। उसकी मौखिक वाणियाँ सत्संगों में बहुत गाईजाती है, जिनमें से कुछ यहाँ उद्धृत की जा रही हैं—

साखी : जिनकी गुरु में बासना, वे पावैं भगवान।
सहजो चौथे पद बसै, अलख पुरुष निर्वांन ॥ १ ॥
सहजो भज हरि नाम को, छोड़ जगत से नेह।
अपना तो कोई नहीं, सगो न अपनी देह ॥ २ ॥

पद—नैनों लख लैनो, साईं तैंड़ हजूर ॥ टेक ॥
आगे पीछे दहिनें बायें, सकल रहा भर्पूर ॥ १ ॥
जिसको ज्ञान गुरू को नाहीं सो जानत हैं दूर ॥ २ ॥
जोग जज्ञ तीर्थ व्रत साधैं, पावत नाहीं कूर ॥ ३ ॥
स्वर्ग मृत्यु पाताल मही में, सोई हरिका नूर ॥ ४ ॥
चरनदास गुरू मोहिं बतायो, सहजो सबका मूर ५

युगल प्रिया की वाणियाँ भी बड़ी मनोहर, गुरु व साधु की महमायुक्त प्रार्थना और नाम स्मरण युक्त, चेतावनी तथा प्रेम-विरह युक्त है नारियों के दैन्य भाव के प्रति, उसके मुख से निःसृत वाणी, देखिये :—

पद—मेरे गति एक आप, दूजो कोऊ और ना।
स्त्री को तन मलीन, कर्म अधिकार ना ॥
चपल बुद्धि बरनी कबि, होत हिये ज्ञान ना।
मंद भाग्य मंद कर्म, बनत नाहीं साधना ॥
विद्या गुन हीन दीन, नेक भक्ति भावना।
नेम ध्यान धर्म कछू, होत ना उपासना ॥
गेह फँसी ग्रसी रोग, एकहू उपाय ना।
करूँ कहा जाऊँ कहाँ, काहू प बसाय ना ॥
इतने पै द्रोह करत, तास भ्रात साजना।
जुगल प्रिया तऊँ तुम्हें, प्यारे पिय लाज ना ॥

भजन संग्रह भाग ३ पृष्ठ १५४

वात्सल्यं प्रेम के विषय में रामप्रिया जी कहती हैं—

जोई जल व्यापक जहान को जननहार,
जाको ध्यान केते जग जाल सों निबटिगो।
जोई दल्यो दानव दिखायो नरसिंह रूप,

उदित दिगंत सों दुहाई हेत हटिगो।
राभप्रिया सोई औध महन्त को चित्र देखि,
धाय घबराय मणिखंभ सो लिपटिगो।
जू जू कहिवो को तुतराय आय दू दू कहि,
अति ही सकाय माय अंक सो छपटिगो॥

भजन संग्रह भाग ३ पृष्ठ २६२

रसिक प्रिया के समान ही भक्तिन 'रानी रूपकुँवारी' जी ने नेमी भक्तों और प्रेमी भक्तों (ज्ञान और प्रेम मार्गीय दोनों) के प्रति अपनी वाणी द्वारा ऐसा कहा है कि—

पद — प्रभु के दो ही दास हैं साँचे ।। टेक ।।
नेमी होय चाहे हो प्रेमी, होय न मन के काँचे ।। १ ।।
प्रथम भक्ति प्रेमी जन पावत, दूजै नेमी राँचे ।। २ ।।
प्रमभाव लखि ब्रजगोपिन को, तिनके संग प्रभु नाँचे ।। ३ ।।
रूप कुँवरी यह सत्य जानलो, हरि साँचे को साँचे ।। ४ ।।

भक्तिन मीरा के समान रूपाबाई हुई है। यहाँ जिसके शब्दों या पदों को साध लोग इकतारे की ध्वनि के साथ गाय करते हैं। एक पद या शब्द उनका भी यहाँ उद्धृत किया जा रहा है

शब्द - तेरी जब तक पार बसाय, हँस हँस मीठा बोलिये। टेक।
समुद्र किनारे रूखड़ा, पात रहे मुर्झाय।
पहलम जावां का पातड़ा, जड़ मूल से जाय। १।
पात झड़न्ता बोलियों, सुन तरुवर बनराय।
अब के बिछड़े नहिं मिलैं, कहीं दूर पड़ेंगे जाय। २।
कै तो हंसा मोती चुगै, कै लंघण कर जाय।
मर गये पिछली प्रीति पै, चुग चुग ककड़ खाय। ३।
हंसा बैठे कद्दू खेत में, मूरख ताड़ू जाय।
मूर्ख तुम क्यों भए बावरे, हंसा किसके कद्दू खाय। ८।

रूपा बाई की विनती, तुम सुनियों सृजनहार।
बेड़ा पड़ा मंझधर में, तुम्हीं लगा दियो पार। ५।

योग की ज्ञान मुद्रा और ज्ञान मुद्रा को धारण करना नारियों के बस का ही नहीं होता। शून्य-ध्यान, अल्प-समाधि और सहज समाधि जैसीं ज्ञान-मुद्राओं को वे धारण न करे तथा चाचरी, भूचरी, अगोचरी, शाकिनी हाकिनी और लाकिनी योग-मुद्राओं कां अभ्यास भी न करे-ऐसी क्रियाएँ न करते हुए, वे अपने श्री गुरु के प्रति श्रद्धाभाव रखकर भजन-पूजन ही करें।

नवम पटल

कुल की तारण–स्त्रियाँ

संस्कार पूतं प्रथमो वेद पूतो द्वितीय कः।
विद्या पूतस्तृतीयः स्यात्तीर्थ पूतस्त्वनन्तरम्।
पूत्रपूत प्रविज्ञाय वितत पूजयेद् द्विजाः।
स्वर्गाय वर्ग फलमन्यथा श्रमतौयियात्।

भविष्य पुनाणः मध्यम पर्व पृष्ठ २४०

अर्थात् गर्भाधानादि संस्कारों द्वारा जिसे पवित्र किया गया हो वह प्रथम, वेदादि मंत्रों द्वारा जिस का जातकर्म आदि किया गया हो द्वितीय, जिसने वेदादि शूत्रों की बिद्या को प्राप्त कर लिया हो तृतीय और जिसने तीर्थ आदि का पर्यटन समाप्त कर लिया हो चौथा – इस प्रकार चार प्रकार से क्षेत्र और सपूत को भली भांति जानकर विप्रों को उसका पूजन करना चाहिए। पुत्र की विशेष कर पूजा न करके वह स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) के लाभ को प्राप्त न करके केबल श्रम का ही लाभ उठाया करता है। इसीलिए सपूत पूत की पूजा का भी शास्त्रीय-विधान है।

पुत्रवती स्त्रियाँ अपने पुत्रों के प्रति रैन-दिवस मानसी पूजा करती हुई, उनके पालन पोषण का कर्तव्य निभाया करती है। जिस प्रकार कछुवी तालाब के किनारे अण्डे धर कर, उनका दूर से ही सेवन किया करती है, उसी प्रकार प्रत्येक माता, चाहे वह अन्यत्र किसी दूर, किसी कार्यंव्यवहार क्षेत्र में कार्यरत हो, अपनी मानसिक प्रवृत्ति की दौड़, हर समय अपने नन्हें-मुन्ने नवजात शिशु की ओर लगाये रहती है। प्रायः लोग कहा करते हैं कि 'डायिनी माता भी अपने पूतों को नहीं खाती है।' कोई भी जननी ऐसी नहीं होती जो अपने पुत्र को कपूत कहे। अपंग-कुरूप और ठिगना-बौना पूत भी उसको बड़ा प्यारा होता है। भले ही माताएँ अपने बालक की उदण्डता, उच्छृंखलता, नटखटता और अन्य किसी भी प्रकार की अव्यवहारिक प्रक्रियाओं के करने से, अपने पुत्र से खिन्न मना क्योंन हो जाय, परन्तु उसका

द्रोह नहीं करती है। इसी लिए माताओं का अपनी सन्तानों के प्रति जो स्नेह होता है, वह अद्वितीय होता है और पिता के द्वारा प्रदर्शित किये गये अपनी कुल सन्तानों के स्नेह से कहीं स्वच्छ और अमिट होता है।

माता-पिता और गुरु, ये तीनो आदरवान् और पूज्य होते ही हैं, परन्तु इनमें भी माता को अत्यधिक श्रद्धेय कहा जाकर, उसको सर्व श्रेष्ठ माना जाता है। इस विषय में कहा गया है कि :–

उपाध्याय दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्त्रेतु पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते।

भविष्य पुराण भाग १ ब्र० पर्व सावित्री माहात्म्य श्लोक ७६ पृष्ठ ८६

अर्थात् दश उपाध्यायों के समान एक आचार्य होता है, सौ आचार्यों के तुल्य पिता होता है और एक सहस्त्र पिताओं के सदृश्य माता होती है। इसी लिए वह अधिक श्रेष्ठतम हैं। पूर्वाचार्यों एवं मनीषियों ने इसीलिए तो 'कुल की तारणा स्त्रियाँ होती हैं'—ऐसा कहा है। अपने अगले परिवार या ससुराल और पिछले परिवार या पीहर के दोनों कुल-परिवारों के साथ ही साथ आचार्यों के कुल-परिवारों की उद्धारक भी नारियाँ ही होती हैं और उनके बिगड़ने पर सभी के कुल-परिवारों को लांछन का टीका लगता है तथा स्वर्गस्थ पितर आत्माएँ भी नरकगामी होने लगती हैं। मीराबाई में चारित्रिक अवदोष नहीं थे और उसके देवर अपनी शंकाओं का समाधान न कर सके तथा मीराबाई को मारने के लिए उसे विष आदि भी दिया गया। अनेक कष्टों को सहन कर मीराबाई ने यही कहा है कि—

कुल को तारण स्त्री, राणा समझी और।
ले जाती बैकुण्ठ को, माना मंहि राठौर।

नागों के मणिभद्रक, धनंजय धृतराष्ट वासुकी, तक्षक, राजिल और कोंकण आदि आठ कुल होते हैं। श्रीकृष्ण ने पद्म कुली के नाग कालीदेह को नाथ दिया था और कंस के मारे जाने पर उसका एक सौ एक कुल नष्ट हो गया था। कंस कुली के नाग या अन्य जीवधारियों पर बिजली पड़ा करती है—ऐसा प्राय: रूढ़िवादी और अंधविश्वासी लोगों की अवधारणाएँ आजतक भी प्रचलित हैं। एक सौ एक कुलों की गणना के विषय में ऐसा कहा गया है –

पूर्व पितृ कुले सप्त तदवन्मातृकुले द्विजा:।
चतुर्दशमिद ज्ञेयं शतलेख ततः श्रृणु:।

पितुरुर्ध्व कुल विंश मातुरुर्ध्य कुल तथा।
तद्वत्परं विजानीयाद्भार्या: पच एव च।
पंच व मातृनश्चास्य पितुर्मातामहे कुले।
पंच पंच विजानी यान्तातृर्मा माता मह्स्य च।
गुरो: पितृकुले पंच तस्य मातृ कुले तथा।
आचार्यस्य कुले द्वन्द्व दशराज कुलस्य च।
रात्तौंर्माता मह कुले पंच चैव प्रकीर्तिता:।
एकोत्तर शतकुलं परि संख्यातमेव च।

(भवि०पु० भाग १—गुरुजन महात्म्य वर्णन श्लोक २७ से ३१)

कहने का तात्पर्यार्थ यह है कि शीलवन्ती, सति, साध्वि और पति-परायणा नारियाँ अपने पितृ पक्ष के सात कुल और मातृ-पक्ष के सात कुल, इस प्रकार चौदह कुलों का उद्धार कर देती है। शतकुली (१००) का वर्णन किया जा रहा है। पिता के उर्ध्व लोक के बीस कुल और उसी भाँति माता के उर्ध्व लोक के बीस कुल और उसी भान्ति (मनुष्य के पक्ष के पाँच और यदि नारी पक्ष कहा जाय तो ये पाँच) पाँच कुल ही समझने चाहिए। माता के मातामह और पिता के मातामह के पाँच-पाँच कुल, गुरु के पितृ कुल में पाँच और उसके मातृकुल में पाँच आचार्य के कुल में दो तथा राजा के कुल में दस कुल-इन कुलों का नारी उद्धार कर देती है। राजा के मातामह के कुल में और पाँच कुलों एवं जिसने इस पृथ्वी मण्डल पर तालाब, मन्दिर, मस्जिद, प्याऊ, कुआ, और धर्मशाला आदि बनवाये हों, वह नारी के सात पूर्वले और सात अगले कुलों का उद्धार करने वाली होती है। सौ से अधिक कुलों का उद्धार करना नारी का अपना धर्म-कर्म होता है, जिनको उसे पूर्ण करना चाहिए। साधारण रूप से नारी कम से कम इक्कीस कुलों का तो उद्धार कर ही सकती है और जैसाकि भविष्यपुराण के गुरुजन महातम वर्णन में ही लिखा है—

समुद्धरेत्कुलशतं शृणु विंश कुल द्विज:।
पच-पचच पित्रोश्च पितुर्माता महस्य च।।
मातुर्मातामहस्येव जाति द्वन्द्वमुदाहृतम्।
गुरो सन्तानके द्वन्द्व तद्वद्यात् व सात्वसो।।

वही श्लोक ३३-३४ पृष्ठ २६०

सूत जी ने संभाषण करते हुए कहा कि हे ब्राह्मण श्रेष्ठ सुनो। अब बीस कुलों के उद्धार का वर्णन करता हूं। सुनो, पाँच-पाँच माता-पिता के तथा उन दोनों के मातामहों के पाँच-पाँच कुलों सहित गुरुजनों की सन्तान के दो-दो यादव-सात्वत और परपक्ष के आदि के एक एक कुलों का उद्धार नारी कर सकती है।

कलियुग में नारियों को श्रेष्ठ कहा गया है और कलियुग उनका उपास्यदेव भी है, इसी लिए नारियाँ पुरुषों की अपेक्षाकृत् कुल परिवारों का निस्तारण करने वाली होगी।

जो कर्म ज्ञान के द्वारा साध्य होता है! वह नैगमिक-आगमिक या अन्तर्वैदिक कर्म कहलाता है और इस कर्म को करने का अधिकार नारी और शूद्र इन दोनों के लिए उपेक्षित या अवाञ्छनीय समझा गया है। देवताओं का पूजन करना आदि बहिर्वैदिक कर्म कहा गया है, जिसके करने के लिए नारी और शूद्र को निषेधाज्ञा रही। परन्तु जिन नारियों ने इन दोनों प्रकार के क्रिया-काण्डों का अतिक्रमण करके इनके विरुद्ध ज्ञानाश्र:यी शाखाओं का आश्रय किया है – वे महान हुई है और शूद्र भी महान् हुए हैं।

उदाहरण स्वरूप गणिका, शबरी, कुब्जा, विदुराणी, जनांवाई, मोरा और सहजोवाई तथा दरियाबाई एवं कमाली आदि-आदि। प्रपापूर्त कर्मों को जैसे गुरु वर्ग की परिचर्या करना, ब्राह्मण को तोषण करना और देवालय बनवाना या देवतादि का पूजन करना-वहिर्वैदिक कर्म बतलाये गये है, किन्तु बिना किसी प्रकार की कामनाएँ किये जोभी कर्म ब्रहिर्वैदिक कर्मों के विपर्यय में किया जाता है, वह भी नैगमिक या अन्तर्वैदिक कर्म कहलाता है। धर्म करने की शाखाएँ-प्रशाखाएँ अनन्त हैं और सत्तासी कुलों के उद्धार का सार तीन बातों में है, जिनको नारियाँ करने में सक्षम हो सकती हैं कि (१) किसी देव स्थान की स्थापना (२) किसी धर्मशाला तड़ाग, कूप, सामुदायिक-भवन आदि का निर्माण (३) औषधालय, मनोरजन स्थान, विद्यालय आदि के निर्माण में आर्थिक सहायता देना, (४) निर्धन-कंगलों को कपड़ा-खाना आदि देना, (५) गुरु जनों की पूजा करना जो पितरगणों की पूजा से परिष्कृत है और (६) पूजा, होम और दान-मान के कार्य-कल्पों का करना ये नारियों के लिए उत्तम-मध्यम और निकृष्ट कर्म तभी बन सकते हैं, जबकि वे सात्त्विक, राजसिक और तामसिक प्रकृत्तियों का जिस प्रकार से मानसिक धर्म करती हो।

श्रुति-स्मृति में जो प्रतिपादित विषय वर्णन है, उसको संत गुरु रविदास जी ने बिवादग्रस्त और विभेद परक कहा है। उसने उत्पीड़ित प्रताडित और

व्यथित मना मीराबाई को ज्ञानोपदेश देकर विश्वविख्यात कवित्री और भक्तिनी बनाया, उसके अतिरिक्त अन्यत्र किसी भी नारी समुदाय में, उस जैसा सात्त्विक व्यक्तित्व नहीं मिलेगा। तभी तो उन्होंने वेदादि धर्म शास्त्रों के विभेद-मूलक सिद्धान्तों की भर्त्सना की है जैसे --

जग में बद बद मानीजे।

(१) इनमें और अकथ कछु औरै कहा कौन पट कीजै।

(२) चारिउ बेद कियो खडौती। जन रविदास करै डडौति।।

रैदास जी बानी पृष्ठ ३२

सन्त रबिदास जी को हम इसीलिए हृदय की ग्रन्थियों को सुलझाने वाला संत कहते हैं, जिसने कुलीन नारी मीराबाई को कुलतारणी बना दिया। नारियां प्रायः पर्वों और ब्रतों को करने की बड़ी उत्सुक हुआ करती है। बर्ण पाँच प्रकार के होते हैं, जैसे। (१) ब्राह्म पर्व (२) बैष्णव पर्व (३) शैव या शवर्ण पर्व (४) त्वाष्ट्र पर्व और (५) प्रति सर्ग-पर्व। अन्तिम पर्व समस्त लोक के नर-नारियों द्वारा पूजित होता है, जैसे होली, दिवाली जन्म-मरण संस्कारादि। ब्रत-पारणों की अनन्त संख्या है; तथा पुरुषों की अपेक्षा नारियाँ ब्रत उपवास अधिक करती हैं। चालीस दिन का चीला, छः मासा बारह मासा और वार्षिक ब्रतों का पारण कर सकने में ही नर सामर्थ्य शालों होते हैं। औरतों को लम्बे समय के ब्रतोपवास करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए।

श्रुति और स्मृति में प्रतिपादित अथबा पुराण और रामायण आदि धर्म शास्त्रों मे जैसा धर्म का निरूपण किया गया है, उससे केबल त्रिवर्ण ही लाभान्वित होते हैं और शूद्र वर्ण तथा नारियाँ उनके ज्ञान से सर्वदा वचित रहती है। ब्राह्मण सभी वर्णों का गुरू कहा गया है, जबकि संत-महात्मा-चाहे बह किसी भी वर्ग का क्यों न हो वह सभीवर्णों का गुरू होता है और साध्वी सती नारियाँ सभी वर्ण के लोगों द्वारा आदरवान् और पूज्या होती है। ब्रह्मा जी ने अपने शरीर-अबयवों को दो खण्डों में विभाजित करके नर और नारी का सृजन किया था—तब तो नारी पुरुष की अर्धांगिनी हुई और उसके समान ही उसको भी धर्म-कर्म करने का पूर्णतः अधिकार है। अर्धांगिनी के प्रति कहा गया है कि—

ततः स भगवान्देवो द्विधा देहमकाररयत्।
द्विधा कृत्वात्मना देहमूर्धेन पुरुषोऽभवत्।।

अर्धेन नारीतस्यॉ च विराजम सृजयत्प्रभुः।
तपस्थतप्त्वासृजद्यं तु स स्वयं पुरुषो विराट ॥
(भविष्य पुराण भाग १ प्रथम पर्व श्लोक ५६-५७)

अर्थात् पाँचों मुखों से वेद-ऋषि आदि की रचनाएँ करने के पश्चात् भगवान आदि देव ने अपने देह के दो खण्ड किये। उनमें से स्वयं आधे भाग में वे पुरुष रूप में प्रकट हुए और आधे से नारी रूप में प्रकट हुए। उन दोनों रूपों ने मिलकर विराज को उत्पन्न किया। तपस्या करके जो विराज उत्पन्न किया वही विराट पुरुप कहलाया। अतएवं नर की भांति अर्धांगिनी नारी का भी आज तक बरावर सम्मान होता आ रहा है।

विधवा हो या सधवा हो, कर्म-ज्ञान और भक्ति योग के द्वारा प्रत्येक नारी अपने कुल परिबार का निस्तारण कर सकती हैं और यदि ये कर्म भी वे न कर सकें तो शील; सन्तोष, आचार-बिचार आदि की शुद्ध-धारणा से भी वे अपने दोनों पक्षीय कुल परिवारों का निस्तारण कर सकती हैं।

गृहस्थ-आश्रम में पत्नी का कर्तव्य है कि वह अपने पति को एक देब तुल्य समझे। अभ्यागतों, सासु-श्वसुरों, बालक-बालिकाओं और सगे सम्बन्धियों के प्रति उनका जैसा औचित्य पूर्ण व्यवहार हो, वैसा करें। गृहणियों का दो प्रकार का शरीर बताया जाता है, जिनकी शुद्धि रखना उनका अपना परम कर्तव्य होता है। एक शरीर वेश्म (घर) होता है और दूसरा अपना उसका स्वय आतम शरीर होता है। इनदोनों को स्वच्छ औन सुसस्कृत रखते हुए उन्हें व्रतोपवास एव बस्तुओं उपभोगों का यथोचित संस्कार करना चाहिए। वही गृहणीअग्नेजीवन में आदरवान् होती है जो नारी सम्बन्धी सभी धर्मों का पालन करती है।

छात्राएँ एबं वालिकाएँ जो अपनी पौगण्डावस्था अथवा जन्म से लेकर सौलह साल की आयु पर्यन्त अपने सद्व्यवहार से अपने पारिवारिक सह जनों को मुदित करती है, वह अपनी ससुराल वालों को भी मुदित करती है। एक परिवार का प्रेम सम्बन्ध जब टूट जाता है, तब लड़कियों को दूसरे परिवार का प्रेम-सम्बन्ध निभाना पड़ता है—यह संस्कार जनित और ईश्वरीय इच्छा पर निर्भर करता है।

● ● ●

नवम पटल

नारियों को चितावन योग्य बातें

'साढ़े तिहत्था बन्दा' का सुसंस्कृत हिन्दी भाषा में अर्थ होता है—साढ़े-तीन हाथ वाला मानव। द्वापर युगीन उत्खननों द्वारा प्राप्त ढांचे (मानव-कंकाल) नौ गजे या अठारह हाथ लम्बे माप और परिमाण तक हैं, जिसे आजकल 'नौ गजा पीर' कहा जाता है, वह भूमिसात् किया हुआ मानव ही रहा है, जिसके प्रति सुनकर बड़ा विस्मय-सा होता है। वैसे प्रत्येक मानव अपने हाथ से परिमाप करके देखें तो उसके शरीर की लम्बाई नख से शिखा तक साढ़े-तीन हाथ परिमाण होती है।

सतयुग में मानव-दानव की आयु का परिमाण एक लाख वर्ष, त्रेतायुग में दस हजार वर्ष, द्वापर युग में एक हजार वर्ष और कलियुग में आकर केवल सौ वर्ष आँका गया और कहा गया है। उद्दालक मुनि ने अट्ठासी हजार वर्ष तप किया था बाल्मीकि ऋषि ने रामायण को दस हजार वर्ष पहले निबन्धित किया था आदि विचार धाराएँ युगों की वर्ष गणना के अनुसार कही गई हैं। ऐसी विचार धाराएँ 'नट की तुक' के समान नहीं है, अपितु इनमें अतीत काल की दीर्घायु का द्योतन हुआ है।

नर की भाँति नारी की आयु का परिमाण भी कलियुग में शतवर्ष ही आँकना चाहिए, परन्तु पुरुष की अपेक्षाकृत नारी की आयु कुछ वर्षों कम अल्प ही होती है—ऐसा साक्षीकरण सबके समक्ष होता ही रहता है। पुनरपि नारी की आयु का परिमाण शत् वर्ष मानकर, हम उसकी सारी आयु की अवस्थाओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार कर सकते हैं—

१—उत्पन्न होने के प्रथम वर्ष से पाँच वर्ष तक की आयु तक = शैव (शैशव) अवस्था।

२—छः वर्ष प्रारंभ से दस वर्ष पर्यन्त की आयु तक = बालावस्था।

३—ग्यारह वर्ष से लेकर सौलह वर्ष की आयु पर्यन्त = किशोरी अवस्था।

४—पाँच वर्ष से लेकर सौलह वर्ष की आयु तक को = पौगण्डावस्था कहते हैं।

५—सत्तरह साल से लेकर पच्चीस साल तक की आयु = यौवनावस्था।

६—छब्बीस वर्ष से लेकर पचास वर्ष तक की आयु = प्रौढ़ावस्था।

७—इक्कावन वर्ष से सत्तर वर्ष पर्यन्त की आयु = बृद्धावस्था ।

८—इक्कहत्तर वर्ष से लेकर सौ वर्ष पर्यन्त की आयु = अति बृद्धावस्था ।

गर्भावस्था वाली नारी की प्रथम प्रसदाबस्था के समय, स्वयं प्रजनन करने वाली माता, उसके सगे सम्बन्धी और बन्धु-बांधव, सासु श्वसुर, पितामह-मातामह, पति-देवर, ननंद, जेठ-जेठानी, यदि है तो देरानी भी और पास पड़ौस के परिवारों मनुष्यों के सहित-सकल पारिवारिक आबाल-वृद्ध, चाचा-ताऊ तथा चाची-ताई तक यही आशा लगाये हुए प्रतिक्षा करते हैं कि किस घड़ी पु नामक नरक से छुटकारा दिलाने वाला पुत्र उत्पन्न हो। परन्तु सबकी आशा-निराशा में बदल जाती है, जब प्रिया-बहु ने अत्यन्त प्रसव वेदना को सहन करके एक मात्र दूसरा ही जन्म पाया हो और उसने कु नाम के नरक से छुटकारा दिलाने वाली कन्या को जन्म दिया हो। पूछा जाने पर सासु ने उत्तर दिया 'लड़की हुई है' और नाश मौंह सिकोड़ कर वह उन्मना सी चुप हो जाती है। ऐसा बोल सुनकर सबके आनन्द में भंग पड़ गया और एक प्रकार का कोहराम सा छा गया। बस जी। जन्म लेते ही कन्या कन्धों और सिर का भार बन गई।

यदि किसी बन्ध्या नारी से कन्या उत्पन्न होने के प्रति कहा जाय तो वह यही कहेगी कि परमात्मा, यदि मेरे गर्भ-कुण्डल से कोई कन्या ही उत्पन्न करदे तो वह अबन्ध्या पुत्र/पुत्रबती होकर सद्‌गति को प्राप्त हो जाय और उसका नाम लेवा-पानी देवा तो कोई न कोई रह जाय। प्राय: धार्मिक अवमूल्यों के आधारभूत सिद्धान्तों के अनुसार यह कहा जाता है कि पुत्र या पुत्री विहीन दम्पत्ति की सद्‌गति नहीं होती है और वे तू नामक नरक में दुःख भोगते हैं, जिस के दुष्परिणाम का कारण पूर्व जन्म के अकृत् कार्य होते हैं।

प्राय: प्रौशवावस्था से लेकर लड़कियाँ नौ वर्ष तक कन्याएँ ही कहलातीं हैं और बारह वर्ष तक बाला या बालिका कहलातीं है। तेरह वर्ष से पौगण्डावस्था तक बह वर बाला या वरयोग्या कही जाती है। जब तक रजःस्वला या ऋतुवन्ती वरबाला का पाणिग्रहण संस्कार नहीं किया जाता चाहे वह कितनी ही आयु की हो गई हो; कुमारी-कन्या ही कहलाती है। ऐसी अवस्था में दोष के भागी उसके परिजनों सहित उसके माता-पिता और बन्धु-बांधव होते हैं।

शिक्षा सम्बन्धी कुछैक बातों को यहाँ दर्शाया जाना औचित्यपूर्ण है—

सहशिक्षा बालक और बालिकाओं की बाल्यावस्था के अन्तर्गत प्रदान की गई शिक्षा अति उत्तम होती है, क्योंकि वे अपने काल-स्वभाव के कारण पारस्परिक

संयोग के गुण-अवगुणों का आभास ही नहीं कर सकते है और उनकी बाल-बुद्धि में शिक्षा ग्रहण करने और खेल-कूद आदि क्रिड़ाएँ करने के अतिरिक्त कुछ और भार उनके सिर पर होता ही नहीं। यदि किशोरावस्था से ही क्षात्राओं को वर्णों के उच्चारण आदि का उपदेशक शास्त्र 'शिक्षा', यज्ञादि के अनुष्ठान सम्बन्धी नियमों का उपदेशक शास्त्र 'कल्प', शब्दानुशासन सम्बन्धी शास्त्र व्याकरण', शब्द निरूपण का शास्त्र 'निरूक्त', छन्द-कविता आदि बनाने का शास्त्र 'पिंगल' और ज्योतिष-शास्त्र-इन वेदों के छ अगों का प्रारभ से ही सहशिक्षा की प्रणाली के आधार पर, बालकों के साथ बालिकाओं को भी शिक्षा दी जाय तो उनके मानसिक स्तर की क्षमता अवश्य बढ़ जाएगी। बाद-बिबाद, वार्तालाप, अन्ताक्षरी और ऐसी ही विद्यालयी शिक्षा प्रणालियों द्वारा उन्हें शिक्षित करना अति उत्तम होगा। उपर्युक्त उपदिष्ट विद्या अर्जन की सभी विधियाँ ब्राह्मणादि चारों वर्णों और ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रमों को अपने-अपने धर्म व कर्तव्य मे नियत्रित करते हुए ससार का बहुत बड़ा उपकार करती है और निर्पेक्ष-भाव की दृष्टि से छात्र-छात्राओं में एक प्रकार का समता-भाव तथा भाई-बहिन जैसे व्यवहार का स्वाभाविक प्रोद्मास भी हो सकेगा।

प्राय: बालिकाओं की किशोरी अबस्था से लेकर ही उसके अन्तर (आत्मा) में यौन सम्बन्धी मानसिक-प्रवृत्तियों का विकास होने लगता है और पौगण्डावस्था को लाँघते ही यौवनावस्था तक यह गति अपना प्रचण्ड रूप धारण करती है। यही दशा छात्र वर्ग की होती है। इसी लिए उन्हें ब्रह्मचर्य या ब्रह्मचारिणी के धर्मों का पालन करना चाहिए। कलियुग में तामसिक मनोवृत्तियों का विकास प्रबल रूप से हो रहा है क्योंकि जैसा पिये पानी वैसी बोले बानी एव जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन वाली कहावतें अक्षरशः खरी उतरती हैं। अत खान-पान तथा सह भोज में विद्यार्थी सात्विक वस्तुओं का ही आहार करने की प्रवृत्ति को अपनाने का अध्यास करे, जिससे उनके देहाध्यास में मूल रूप से सातिबक मनोवृत्तियाँ ही स्थिर रहें। ऐसी अवस्थाओं में सह-शिक्षा एव सहवास-सहभोज आदि अनिष्टकारी न होकर सदाचार और शिष्टता में सहायक प्रक्रम होंगे।

अधिक न कह कर हम नानियों की शिक्षा-सम्बन्धी विषय गत बातों को न लेकर, छात्राओं या स्त्री-नारियों की योग शिक्षा पर थोड़ा सा प्रकाश अवश्य डालना चाहेंगे –

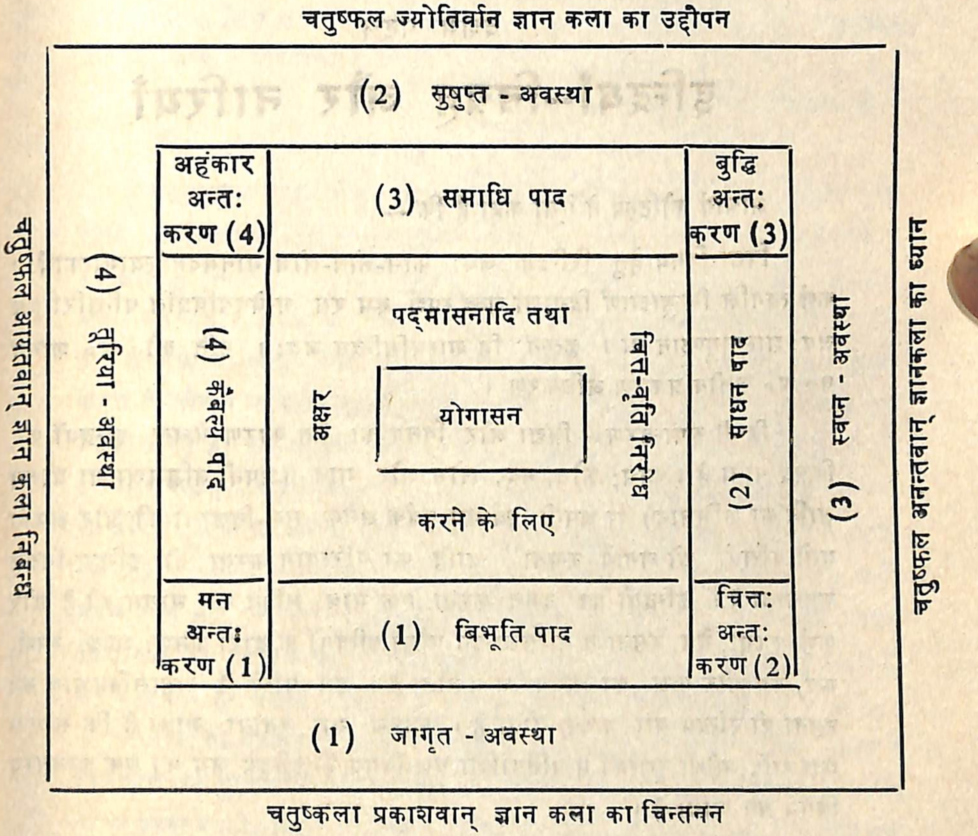
प्रज्ञा से योग प्राप्त होता है और योग से आत्मविश्वास जागृत होकर विद्या की शक्ति की वृद्धि होती है, जिसके लिए अनुशासन ध्यान और आसन-योग की

आवश्यकता पड़ती है। नारी वर्ग को योग-शिक्षा के उन विद्याविदो से सीखनी चाहिए जो उसमें निपुण हो और आचार-विचार में भी पवित्र हो। वैसे तो ऐसी विद्या प्राप्ति का मूलाधार "विद्यावृद्ध संयोग' होता है। योग और प्रयोग में कुशल योगी-आचार्य ही उनको ऐसी शिक्षा देकर उन्हें दक्षता प्रदान कर सकता हैं। योगासनआदिके लिए यहाँ एक साधारण विधि का निर्देशन किया जा रहा है, जिसके द्वारा पतंजलि के योग शास्त्र का सारा ज्ञान सहज ही हो सकता है-जैसे कि रेखांकित चित्रण से ही छात्राएँ सीख सकेगी जोकि अन्तः करण की शुद्धि के सम्बन्ध का प्रदर्शित करता है।

योगासन का चित्र अगले पेज ६१ पर देख।

दिव्य दृष्टि प्राप्त करने के लिए अपने आसन पर बैठ कर और आँखें मूँद कर मनन-चितन ध्यानादि करने के लिए सतत अभ्यास की आवश्यकता होती है जिससे (१) पूर्व-पश्चिम और उत्तर दक्षिण का चतुष्कल प्रकाश वान्। (२) पृथ्वी, जल, वायु और व्योम-चतुष्कल का अनन्तवान्। (३) अग्नि सूर्य, चन्द्रमा और विद्युत-का चतुष्कल ज्योतिवान् तथा (४) प्राण, चक्षु, श्रोत् और मन का चतुष्कल आयतवान् प्रकाशों का ज्ञान ध्यान-योग से हो जाता है—जिनके प्रसाधन करने से नारियों की योग-भक्ति करने की सहज-स्वाभाविक प्रवृत्ति पक जाती है।

● ● ●


चतुष्फल ज्योतिर्वान ज्ञान कला का उद्दीपन
(2) सुषुप्त - अवस्था
अहंकार अन्त: करण (4)
(3) समाधि पाद
बुद्धि अन्त: करण (3)
(4) तुरिया - अवस्था
(4) कैवल्य पाद
पद्मासनादि तथा
अक्षर
योगासन
चित्त-वृत्ति निरोध
करने के लिए
(2) साधन पाद
(3) स्वप्न - अवस्था
मन अन्तः करण (1)
(1) बिभूति पाद
चित्त: अन्त: करण (2)
(1) जागृत - अवस्था
चतुष्फल आयतवान् ज्ञान कला निबन्ध
चतुष्फल अनन्तवान् ज्ञानकला का ध्यान
चतुष्कला प्रकाशवान् ज्ञान कला का चिन्तनन

दशम पटल

इन्द्रियाँ-निग्रह और नारियाँ

आचार्य कौटिल्य ने ऐसा कहा है कि—

विद्या विनय हेतु रिन्द्रिय जयः काम-क्रोध-लोभ मानमदहर्षत्यागात्कार्यः। कर्णं त्वगक्षि जिह्वाघ्राणँ द्रियाणां शब्द स्पर्श रूप रस गन्धेष्वविप्रति पन्तिरिन्द्रिय जयः शास्त्रानुष्ठानं वा। कृत्स्नं हि शास्त्रमिन्द्रिय जयः। इति कौ० अ० शास्त्र ष० अ० तृतीय प्रकरण अधिकरण।

हिन्दी रूपान्तरण – विद्या और विनय का हेतु कारण केवल इन्द्रियों पर विजय पाना है। काम; क्रोध, मद्, लोभ और मान (अपनी बुद्धिमत्ता या यौवन आदि का अभिमान) या अपनी स्वैच्छा पूर्वक अनेक सुख-विलासों की ओर अपनी मनो वृत्तियों को लगाये रखना" आदि का परित्याग करना ही इन्द्रिय-निग्रह कहलाता है। इन्द्रियों का दमन करना एक मात्र मुक्ति का साधन भी है और कर्ण, त्वचा, नेत्र, रसना व नासिका-इन पाँचों इन्द्रियों के द्वारा क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का विषय भोग होता है। इन पाँचों में अनासक्तिभाव का रहना ही इन्द्रिय वश करना होता है। कारण यह बताया जाता है कि समस्त शास्त्रादि, पौथी-पुस्तकों में प्रतिपादित वर्ण-विषय ही इन्द्रिय जय का एक ज्ञानगम्य बिषय बन जाता है।

क्रिया द्रव्य या उपयुक्त नारी अथवा नर पात्र के ऊपर मृदुल स्वाभाविक भय-दण्ड ही प्रभाव डालता है, उदण्ड व्यक्तित्त्व वाले मानव प्राणी पर नहीं डाल सकता है। जिस नारी या नर ब्यक्ति की बुद्धि गुरूजनों, माता-पिताओं, भाई-बान्धवों और परिचित-अपरिचित जनों के ज्ञानोपदेशों को श्रवण, मनन तथा ग्रहण करके भी मन की धारणा पावन न हो सके तो उन्हें सुशिक्षित और विनीत और कौन बना सकता है। तत्त्व की बातों को यथार्थ ज्ञान जो भी ग्रहण करके उसके वास्तविक अर्थ का ज्ञान अपने हृदयंगम करलें, वेही सच्चे मानव धर्म का पालन करने वाले कहलाते हैं। नारियों में सति और पुरुषों में यति का आदर उनके

चारित्रिक गुणों के कारण ही तो होता है—रूप, रंग, सौंदर्य लावण्य और हाल-चाल से नहीं होता है।

पूर्वाचार्यों तथा नीतिज्ञों की यह धारणा रही है कि गृहस्थ आदि आश्रमों को चलाने के लिए कठोर दण्ड की नीति को अपनाना चाहिए जैसा कि शूद्र और नारियों के प्रति गौस्वामी तुलसी दास ने भी कहा है कि —

ऐसा कहना ठीक नहीं है।

चौ० ढोल गँवार शूद्र अरु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी।

परन्तु कुछ शिक्षा विद् आचार्यों का यह भी मत रहा है कि कठोर दण्ड नीति या भयदायक प्रक्रियाँ अपनाने से नारी या अपने शासनाधीनजन इतने उद्विग्न हो जाते हैं कि वे उल्टी हानि या अपमान करने को उद्धित हो जाया करते हैं। मृदुल स्वभाव वाले नर या नारी जो अपने बाल-बच्चों को किसी प्रकार का भी भय न दिखाकर उन्हें अधिक प्रेम-प्रीति या स्नेह-लाड़ किया करते हैं, वे बिगड़ जाया करते हैं और वे उल्टे रूप से उन्हें ही सताया करते हैं। व उनका अपमान तक किया करते हैं, कुवचन कहा करते हैं तथा धर्म-अर्थ और काम सम्बन्धी हानि भी किया करते हैं। यथोचित भय या प्रीत दिखाने वाले माता-पिता अपने बाल-बच्चों से और शिक्षक-शिक्षिकाएँ अपने छात्र-छात्रों से सदा आदर-सम्मान प्राप्त किया करते हैं। यही दशा धार्मिक क्षेत्र में गुरू और उनके शिष्यों की होती है। यदि काम-क्रोध मद, लोभ और अज्ञान वश अथवा ऊँच-नीच की भावना के कारण विद्यालय का शिक्षक या शिक्षिका अपने छात्र-छात्राओं को आतकित करते हैं, तो वे अपना ही अहित अपने स्वभाव के कारण आप ही करते हैं।

नारी हो या नर हो, उन्हें ऐतिहासिक चरित्रों को अपनाना चाहिए। बहुत से राजागण तक दुष्कर्मों के कारण सदैव अपमानित और तिरस्कृत हुए हैं। भोज वंशीय राजा दांडक्य और विदेह राज कराल दोनों ही अत्यधिक कामुक होने के कारण नष्ट हुए, क्योंकि उन्होंने एक विप्र कन्या को आसक्ति से देखा था और उस कन्या के पिता ने उन्हें उनके भाई-बन्धुओं सहित अभिशाप दे कर उन्हें नष्ट कर दिया था उज्जैन के अधिपति भर्तृहरि की नारी पिंगला ने अधिक काम के वशीभूत होकर अपने स्वामी को सन्यासी बन जाने का, कलंक धारण किया था। राजा परीक्षित के पुत्र जन्मेजय ने किसी ब्राह्मण पर बिना किसी कारण आक्रमण किया था और वह भी नष्ट हुआ। राजा तालजंध्य भृगुवंशियों पर क्रोध करके विनष्ट हुआ और अति दर्प-अभिमान के वश होकर रावण ने श्री सीता का अपहरण किया था, जिस कारण उसका कुल वंश नष्ट हुआ। अत्यधिक लोभ के कारण वशीभूत होकर राजा पुरूरवा

और सिन्धु प्रदेश के नरेश अजबिन्दु ने चारों वर्णों की सारी सम्पत्ति का अपहरण किया था और वे भी प्रजा द्वारा नष्ट हुए। राजा बैन धर्म में अधिक बाधक बन जाने के कारण घृणित हुआ। वैसे नारियों के प्रति हम उदाहरणों को प्रस्तुत नहीं करना चाहते। सभी सन्त महात्माओं ने तो काम क्रोध मद लोभ मोह को दमन करने के सच्चे उपदेश दिये हैं और उनका अनुसरण करके बहुत सी महिलाओं ने अपना नाम इस संसार में उजागर किया है।

उपर्युक्त संद्रभों को स्मरण करते हुए, यदि प्रत्येक नर या नारी वर्ग का व्यक्ति-विशेष काम क्रोधादि षट् रिपुओं पर अधिकार करले अथवा अपनी दशों इन्द्रियों और मन को अपने वश में करले तो, वह कहीं भी भयभीत न हो सके, अनादर का पात्र या पात्रा न हो सके। चारू रूपिणी दृष्टि द्वारा पर पुरुष को वश करना और धर्म-कर्म का त्याग करना नारी को शोभा नहीं देता तथा उसी भाँति अपने योग क्षेम के कार्यों का त्याग करके कामुक व्यक्तित्त्व वाला बन जाना मनुष्य को शोभा दायक नहीं होता। सहपाठी साथ-साथ अध्ययन करने, खेलने और व्यवसायिक कार्य-व्यवहारों के करने में यदि अपनी धृष्टतावश परस्पर अनुचित वार्तालाप समागम, संलाप, मितव्यता और अनौपचारिक कार्य करते हैं तो वे समाज की दृष्टि में दुष्चरित होंगे ही नर-नारी के गुप्त विषय कर्मोंद्रियों के समान धर्म तथा गुण-शील के कर्तव्य, अमुक रूप से सबको अवगत होते हैं। यदि किसी भी पक्ष से किसी प्रकार की त्रुटि भी होती है, तो उसका अवगुण दोनों ही पक्षों पर आक्षेपित होता है। अतः अवगुण के कर्मों का सदैव त्याग करना ही सच्ची मानवता कहलाती है।

कहावत है कि "लगौट का सच्चा, हाथ का सच्चा और वचन का सच्चा; कोई भी नर प्राणी हो, वह कहीं भी मार या मात नहीं खाता है।" जिसने मन आदि इन्द्रियों को दमन कर लिया हो, उसने सारे विश्व को दमन कर लिया है। बातें तो बड़ी ही सार्थक हैं, करके देखिये।

पंच जनां मिल कीजै काजा। हारैं-जीतैं न आवै लाजा ॥ १ ॥

और :—पाँच जनों की लाकड़ी-एक जनें का बोझ । २ ॥

उपरोक्त दोनों कहावतें पचीकरण करने के समान हैं। पाँचों ज्ञानेंद्रियां व पाँचों कर्मेन्द्रियाँ, यदि सही ज्ञान तथा कर्म को कर रही हो तो शरीर अवयवों को कोई हानि नहीं हो सकती है और उनमें से यदि कोई सी भी ज्ञान-या कर्म की इन्द्रियाँ (हाथ, पैर, श्रवण आदि) विपरीत हो जाय तो कर्म या ज्ञान की गति-विधि

की आन्तरिक मनोवृत्तियां ही अवरुद्ध हो जाय। जिस प्रकार शरीर-अवयवों या इन्द्रियों के बिगड़ जाने पर; घट के भीतर बैठा हुआ; हंस बड़ा व्यथित रहता है और अपनी रुग्णता मिटाने के लिये अनेक भांति के उपचार, अभिचार व काल से बचने के लिये, नाना प्रकार के उपाय करता है, ठीक उसी प्रकार, किसी गृहस्थ के सदस्यों के बिगड़ने या कुमार्गीय कार्यों के करने से, उस गृहस्थ का संचालन, प्रगति और व्यवस्था में भी अवरुद्धता आने लगती है तथा उस गृहस्थ का मुख्य-व्यक्ति, अपने गृहस्थी व्यष्टियों को उद्विग्न न होने देने की अनेक विधियां अपनाता है—पर वह सभी प्रकार के उपायों को करता हुआ भी असफल ही रहता है—स्वयं दुःखी हुआ करता है।

अपने-अपने गृहों के कार्यों को ठीक प्रकार से सम्पादन करने की नैपुण्यता रखने वाली प्रत्येक नारी आदरणीया होती है। प्रायः अपने घर का सारा भेद, लोभी, क्रोधी, लालची, भयभीत, अपमानित और ताड़ित-प्रताड़ित नारियां; प्रकट कर दिया करती हैं। ऐसा आचरण किया जाना, उनके लिये एक प्रकार से दूषण युक्त' कार्य व्यवहार कहा जाता है। हमको ऐसे तथ्यों का अवलोकन भी करना चाहिये, जिनके कारण नारियां अपमानित किये जाने पर कुचक्रों में न पड़ सकें। उपर्युक्त लक्षणों वाली नारियों के स्वभावगत वर्गीकरण को यहां दर्शाया जा रहा है :-

(अ) भयभीत-नारी वर्ग :—(१) जिसने अपने आप को किसी क्रूर-कर्म करने के कारण दूषित कर लिया हो, (२) जिसने किसी भी प्रकार का अपराध किया हो, (३) जिसने किसी भी परपुरुष (जारादि) के अंग-संग मिलकर समागम किया हो, (४) जो अपने स्वजनों या अन्यों द्वारा अपमानित की गई हो, (५) जो अपने समान व्यवहार वाली अन्य नारी को ताड़ित-प्रताड़ित होती हुई को देख कर, भयभीत रहती हो, (६) जो परित्याग किये जाने की धमकियों से सदा स्तब्ध सी रहती हो, (७) जो अपने तन-बदन के रूप-रंग व लावण्य की कान्ति से रहित या कुरूप हो, (८) जो अपने पति के अतिरिक्त सासु-श्वसुर या द्वेवर-ननद आदि द्वारा सताई जा रही हो, (९) जो अपने पीहर वालों के द्वारा भय दिखाकर, उसकी ससुराल भेजी गई हो और (१०) जो पुत्रवती न हो चुकी हो या बन्ध्या और काक-बन्ध्या हो गई हो।

(ब) क्रुद्ध-नारी वर्ग :—(१) जिसको घरेलु सम्पत्ति का समान रूप से बँटवारा न दिया गया हो, (२) जिसको, नारी-पर्वों पर, दात-शोभा, कुण्ढारा-कौथली, गोद-भरण अथवा भात आदि प्रचुर मात्रा से न दिया गया हो, (३) जिसको, उसकी दुरानी या जेठानी की अपेक्षाकृत् कम प्रीति-भाव दिया

जा रहा हो, (४) जो अपने धर्म व व्यवहार के अनुसार कार्य-व्यवहारों अथवा अपने पति और सासु-श्वसुर की सेवा श्रुश्रुषा करने में अभिरुचि न रखती हो, (५) जिसको सम्मानित करने योग्य किन्हीं आयोजनों पर अपमानित किया गया हो, (६) जिसको बलात् (प्रकर्ष) उसकी ससुराल वाले उठा लाये हों, या अपहृत कर लाये हों, (७) जिसके साथ दासी, नौकरानी, आहिता (बन्धक) और सेविका जैसा व्यबहार किया जा रहा हो, (८) जिसको कुरूप, अपंग अथवा सुलक्षणा न होने के कारण चिड़ाया जाता हो या जिसकें साथ वाक्पारूषता का व्यवहार किया जाता हो, (९) जिसको मिथ्या प्रलापों घृणास्पद-वचनों और कटु-उक्तियो द्वारा, उसके सदाचार से वंचित किया जाता हो, (१०) जिसके पुत्र-पुत्री या सगे भाई-भतीजों (अनाश्रित उसके पास रहने वाले) को अकारण ही सताया जाता हो, और (११) जो अपने पीहर अथवा ससुराल वालों की अधिक लाडली हो ।

(स) लोभी-नारी वर्ग :—(१) जिसका आबन्ध्य-आभूषण इत्यादि सब धन द्रव्य का अपहरण कर लिया गया हो, (२) जिसकी सारी धन-सम्पत्ति गृहस्थ-कार्यों या अन्य कार्य-व्यवहारों में; उसकी स्वैच्छा के बिना, लगा दी गई हो, (३) जो दुर्व्यसनों द्वारा धनादि अर्चन करके, उसकी संग्रह वृत्ति रखती हो, (४) जो अपने जीवन-पर्यन्त तक के सुख को त्याग कर, निरपेक्ष रूप से धन प्राप्ति की अभिलाषा से, सदैव अपने कार्यों में ही व्यस्त रहती हो, (५) जो चोरी, अतिचार, कुकृत्य-कर्म आदि को अपनी लोभी-प्रवृत्ति के कारण करती हो और (६) जो कलारी-नारी कीं भांति मदिरा आदि को छिपे रूप से क्रय-विक्रय करती हो—इत्यादि ।

(द) मानीनी-नारी वर्ग :—(१) जो अपने आप को दर्प-अभिमान प्रदर्शित करती हुई, चढ़-बढ़कर मानती हो, (२) जो अपने और पराये लोगों से अपना आदर-सम्मान अधिक रूप से कराना—चाहती हो, (३) जो पर घर की नारी को, शत्रुबत् व्यवहार करती हुई को देखकर, वैसा ही व्यवहार करना चाहती हो, (४) जिसको नीच प्रवृत्ति वाले अन्य लोग अधिक बढ़ावा दे रहे हों, (५) जो क्रूर और तीखे स्वभाव वाली हो, (६) जो भोग-संयोग और विलासिता से कभी भी संतुष्ट न होती हो, (७) जो अपनी सासु, ननद या जेठानी इत्यादि से अपनी सेवा कराना चाहती हो और उनको ताड़ना-प्रताड़ना देती रहती हो, (८) जो सौतिया डाह, जलन, मनोद्वैष अथवा ईर्ष्याभाव रखती हो, और (९) जो अपने पति आदि की अवज्ञा घृष्टतापूर्वक करती हो; इत्यादि-इत्यादि ।

नारियों के शुद्धाचरण सम्बन्धी कुछ विशेष, सांकेतिक, तथ्यात्मक और

गुण-ग्रहण करने योग्य बात और इस प्रकार निगदित की जा रही हैं। उपवाद या हाथ, नाक, पैरादि के प्रदर्शन द्वारा, जो नारियां दूसरी नारियों के संग झगड़ा करती हैं, वे प्राय: दूसरों के द्वारा अपमान की दृष्टि से देखी जाती हैं। जिन नारियों का अनादर होता हो, वे अपने आदर पाने के लिए सद्व्यवहारों को ही ग्रहण करने का प्रयास करती रहे। शरीर, प्रकृति, प्रवृत्ति, जीविका और व्यवहार, ये पांचों आदर-सम्मान पाने के लिए—संसाधन होते हैं। यहां प्रकृति का अर्थ है—जातीय उपहास; जिसके सम्बन्ध में, न तो उच्च वर्गीया किसी निम्न वर्गीया नारी को और न निम्न वर्गीया, किसी उच्च वर्गीया नारी को उलाहना दें। एक विशेष बात यह है कि नारियों को कभी भी: परस्पर गाली-गलौच (वाक्पारुषता) नहीं करना चाहिए। कुछ नारियां परस्पर कलह-द्वेष के कारण ऐसे झगडें करती रहती हैं; जिससे कि एक-दूसरी की चुटियां तक पकड़कर, उसको घसीटती और पीटती हैं। मातृवत् अपनी सासु को, जो नारियां मारा-पीटा करती हैं, वे अपने वृद्धापन में अपने बेटों की बहूओं द्वारा मारीपीटी जाया करती हैं—जिसे एकमात्र उनका पारस्परिक 'बदला' कहना चाहिए। इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त दिया जा रहा है :—

"किसी वृद्धा के बेटे की बहू, उसको खान-पान की चीजें, एक ठींकरे में भर कर दिया करती थी। बुढ़िया बेचारी लाचार थी और सदैव अनमना-सी रहती थी। वह कहती कुछ भी नहीं थी और सब्र करके अपने मन को मार लेती थी। एक दिन बहू के सामने ही, उस बुढ़िया के बेटे ने, सभी प्रकार की जानकारी होने पर, अपनी माँ से ऐसे दु:खद व्यवहार के प्रति अपनी, बहू को आक्रोश-विक्रोश किया ऐसा देखकर बुढ़िया-माँ बोली :—"बेटा ! बहू को कुछ मत कहो। यह अपने अगम में कांटे स्वयं बो रहो है। इसके बेटे की बहू; जब इसके साथ ऐसा व्यवहार करेगी, तब इसको अपने किये हुए कर्मों पर पश्चाताप होगा। यह तो एक प्रकार का बदला है।"

बुढ़िया-माँ काल परास्त हुई और समयानुसार उसके बेटे की बहू वृद्धा हो गई। उसके बेटे की बहू ने एक ठींकरा सगवां कर रख दिया। उसकी वृद्धा-सासु ने, जब यह पूछा कि बेटी तुम यह क्या कर रही हो ? तब उस बहू ने कहा, "जैसा व्यवहार तुमने अपनी सासु के प्रति किया है; वैसा ही व्यवहार मैं तुम्हारे साथ करूँगी।"

अत: ऐसे आचरणों को सासु-बहू के व्यवहारों का 'अदला-बदला' ही समझना चाहिए। एक ज्वलन्त उदाहरण 'श्रवण कुमार' वाला सांकेतिक

दृष्टिकोण से सदैव स्मरण रखना चाहिए, जिससे साध्वी नारियां अपने सासु-श्वसुर के प्रति 'एक हण्डिया में दो पेट' न करके, उनके साथ खान-पान एवं व्यवहार में द्विधा न करे।

नारियों ! आप अपने आप में सीमित होकर; आचार्य चाणक्य के नारी चरित्र सम्बन्धित कथन सूत्रों का निम्नलिखित प्रकार से हृदयंगम करके देखियेगा :—

१. **अग्नि दाहादपि विशिष्टं वाक्यपारुष्यम्**=वाणी की कठोरता अर्थात् गाली-गुप्तार करना, एक मात्र अग्नि से भी भयंकर दाहकारक होता है।

२. **बल्लभस्य कारकत्वमधर्मयुक्तम्**=किसी नारी के प्रेमी पुरुष का निष्कर्मी होना, बड़ अधर्म की बात है। उस निठल्ले-लम्पट प्रेमी पुरुष का साथ, उसकी प्रेमिका कहाँ तक और किन-किन परिस्थितियों में देती रहेगी।

३. **न नीचोत्तमयोर्वैवाह**=नीच या उत्तम स्वभाव (वर्ण, वर्ग, जाति या श्रे:णी से अभिप्राय: नहीं है।) के पुरुष और दुष्ट-स्वभाव वाली नारी के साथ पारस्परिक, वैवाहिक-सम्बन्ध नहीं करना चाहिए।

४. **अधनः स्वभार्याऽप्यवमन्यते**=धनहीन पुरुष की स्त्री भी अपने पति का अपमान कर देती है। (सुलक्षणा नारियाँ ऐसा कभी नहीं करती हैं।)

५. **भर्तृवशवर्तिनी भार्याः**=अपने पति के वश में रहनें वाली पत्नि ही भरण-पोषण की अधिकारिणी होती है; अर्थात् अपने स्वपति की आज्ञा में रहने वाली नारी सुखी और सम्पन्न रहती है तथा अन्त में, वह स्वर्गादि के सुलभ सुख भी भोगती है।

६. **अलौहमयं निगड़ंकलत्रम्**=स्त्री का बन्धन बिना लोहे की बेड़ी के समान होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्री को स्वतन्त्र नहीं रखा गया है।

७. **गुरुणां माता गरीयसी**=गुरुजनों में माता का स्थान, सबसे ऊँचा होता है। नारियां अपनी सासु को अपनी माता के समान समझें; जिससे (ऐसा समझने से) उसका मान बढ़ता है।

८. **स्त्रीणां भूषणं लज्जा**=नारियों का भूषण लज्जा है। आचार-विचार, गुण और शील-स्वभाव से रहित, और स्वर्ण-रत्न जड़ित आभूषणों को धारण करती हुई भी; ऐसी नारियाँ आदर की पात्रा नहीं हुआ करती हैं; जिनके व्यक्तित्त्व में लज्जा-शीलता न हो।

९. **अतिलाभः पुत्र लाभः**=स्त्रियों का प्रथम बार पुत्रवती होना ही

सब प्रकार के धनों की प्राप्ति से श्रे:ष्ठ होता है। स्त्री का प्रथम वार कन्यावती होने में दोष नहीं मानना चाहिए, क्योंकि न जाने कितने बड़े भाग्य को लेकर कन्या इस भू पर अवतरित हुई हो।

१०. स्त्रिणां भूषणं सौभाग्यम्=स्त्रियों का आभूषण; उनका 'सौहाग' होता है। 'बूढ सौहागिनी हो'—ऐसा प्राय: वृद्धाएँ, विवाहिता-नव-युवतियों को वरदान दिया करती हैं। 'तेरे सुहाग में आग लगे'—नारियों को ऐसा वाक्पारुष्य (गाली-गलौच) नहीं कहना चाहिए।

११. स्त्रिणां मनः क्षणिकम्=स्त्रियों का मन क्षण-क्षण बदलता रहता है। प्रसवा स्त्रियों का मन अधिकांशत: ऐच्छिक, खाने-पीने की वस्तुओं के प्रति बदला करता है, जिसकी पूर्ती कर देना–'उत्पन्न होने वाले शिशु के स्वभाव पर पड़ता है', ऐसा कहा जाता है और उत्पन्न हुआ शिशु बुरी-नियति का नहीं होता। उपरोक्त सूत्रों के अन्नर्गत शिक्षाओं को समझ कर, नारियां उनके उद्देश्यों को अपने-अपने चरित्र-व्यक्तित्त्व में ढालने का प्रयास करती रहं—ऐसी हमारी आस्था है और सामाजिक स्थिति में वर्तमान कालिक कुगतियो का भी बाध हो जाय—ऐसी आशा है।

भक्ति के मार्ग की दृष्टि से नारियां, इन्द्रियां-निग्रह कर सकती हैं। उनके लिए दास-भाव, (दासी या सखी-भाव की भक्ति जानना चाहिए) वात्सल्य-भाव और माधुर्य-भाव की भक्ति ही सर्वश्रे:ष्ठ बतलाई गई है। दास-भाव की भक्ति के अनुरूप नारियां, दासी के समान अपने स्वामी या पति के चरणों में अपने तन-मन-धन को सर्वस्व रूप से अर्पण कर देती हैं। वात्सल्य-भाव की भक्ति उनके लिए ऐसी ही होती हैं, जैसी कि गौ की; क्योंकि प्रत्येक नारी अपने बच्चे को, इस प्रकार प्रेम करती है; जिस प्रकार गौ अपने बछड़े को प्यार करती है। तीसरी माधुर्य-भाव की भक्ति—वह भक्ति है, जिसमें पतिव्रता स्त्रियां, अपने सब कार्य अपने पतियों को सन्तुष्ट करने के लिए ही करती हैं और उनके मन में किसी प्रकार की कोई इच्छा ही नहीं होती।

जिस प्रकार प्रकृति परमात्मा की स्त्री है, उसी प्रकार स्त्रीलिंगी आत्मा भी सब प्राणियों की स्त्री है। परमात्मा ही सब आत्माओं का स्वामी, मालिक, नाथ और पति है। इसीलिए परमात्मा के समान नारी का पति ही; उसकी आत्मा का स्वामी है, अन्य नहीं। दूसरे नारी; नर की अर्धांगिनी कहलाती है। पति के साथ पत्नी का शारीरिक सम्बन्ध होता है। शरीर के माध्यम से किये गये शुभाशुम कर्मों के कारण स्वर्ग-नरक की प्राप्ति होती है। शङ्कराचार्यजी और मण्डन मिश्र के वाद-विवादों की मध्यस्था करने वाली और निर्णायिका विदूषी विद्याधरी 'भारती' ने अपने पति के परास्त हो जाने पर ऐसा कहा था कि :-

अपितु त्वयाद्य न समग्रजित: प्रथिताग्रणीर्मम पतिर्यदहम् ।
बपुरर्द्धमस्य न जितामतिमन् अपि मां विजित्य कुरु शिष्यमिमम् ।।

अर्थात् हे, मतिमान् शंकराचार्य जी ! आपने मेरे अद्वितीय विद्वान् व मेरे पति मण्डन मिश्र को अभी पूर्णरूपेण विजित नहीं किया है, क्योंकि अभी तक उनकी अर्धांगिनी मैं अवशिष्ट हूं । अत: मुझको भी परास्त करके, आप मेरे पति सहित, मुझको भी अपनी सेविका बनाइये। पतिव्रता स्त्रियों ! तुम अनन्य भाव से भगवान की भक्ति करती हुई, तुम्हें अपने-पतिदेव की भी सेवा-भक्ति भाव से करनी चाहिए। अपनी किसी बात पर प्रगल्भता पूर्वक हटधर्मी करते हुए, किसी बात को करने या कराने के प्रति अकड़ते या ऐंठते हुए और किसी बात के प्रति अपनी मनमानी करते हुए-तुम्हारे नारीपन की एकार्थ चारिता ही समझी जायेगी। अतः एकार्थचारिता के स्वाभाविक अवगुणों का सर्वदा त्याग करना ही, तुम्हारे लिए अच्छा गुण और लक्षण होगा ।

गँवारू लोग अपनी खड़ी बोली में प्राय: स्त्री को अपमानित करते हुए उसको 'त्रिया' कह दिया करते हैं । त्रिया अपभ्रंश शब्द का सुसंस्कृत शब्द 'स्त्री' या नारी होता है। सत्संग में इस शब्द से युक्त निम्न साखी बोलते हुए; किसी साधजन को हमने समझावट दी कि 'त्रिया' शब्द के स्थान पर वह सदैव 'नारी' या स्त्री शब्द का ही प्रयोग किया करें; क्योंकि सत्संग-मण्डली में छात्राएँ/बालिकाएँ, नव युवतियां तथा वृद्धाएँ भी सम्मिलित होती हैं -और वे इस शब्द को सुनकर लज्जित, अपमानित एवं अनमना सी होती हैं। 'त्रिया' शब्द का जिस साखी में उच्चारण किया गया था; उसको यहाँ उद्धृत किया जा रहा है :—

साखी :- त्रिया में गुण तीन हैं, औगुण भरे अनन्त ।
शल्य रचै, मंगल गावैं, कोई ऊपजै सन्त ।।

शिवा, लक्ष्मी और ब्राह्मी—इन तीनों आदि शक्तियों को वैसे तो त्रियाएँ कहा जाता है; परन्तु आज के युग में; इस शब्द को अशुभ और लांछनीय माना जाता है और नारियां इस शब्द को सुनकर चिड़ती हैं। अत: भविष्य में साधजन, हमारे सत्संगों में इस 'त्रिया' शब्द का प्रयोग न करें ।

जहां स्त्रियों का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं । ऐसे समुदाय, जाति, परिवार की उन्नति, सुख-समृद्धि और ईश्वरीय-आनन्दों की प्राप्ति होती है और उनसे आज और आने वाले समय में भी, सभी लोग प्रेरणा लेते रहते हैं, क्योंकि मनुष्य सदैव ही अनुकरण करता है एवं हमेशा वह यही प्रयास करता रहता है कि उसे 'आज' कुछ कल से अच्छा करना है ।

परिशिष्ठ (अ)

अष्टम-पटल का अवशिष्ट-भाग

चाहे प्रेमा:श्रित भक्ति की जाय, अथवा ज्ञाना:श्रित भक्ति की जाय; इन दोनों प्रकार की भक्तियों को करने के लिए नर की भाँति नारी को भी 'ओं भूर्भुव स्व:' आदि गायत्री मंत्रों और 'आपो ज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भव: स्व: औम्' आदि शिरो मंत्र प्रदान करने की परिपाठी प्रचलित की जाती तो नारियाँ भी ज्ञाननिष्ठा और योगनिष्ठा होती। पहले स्वयंभू मनु की पत्नी शतरूपा ने प्रेम-मार्गीय भक्ति की है। पार्वती ने अपनी कुमारी-अवस्था में प्रेम से मिश्रित व हठयोग से सम्बन्धित भक्ति की है। हिरण्यकशिपु की गर्भवती स्त्री 'कयाधू' ने नारद जी से उपदेश लेकर; श्री हरि की प्रेम-भक्ति की है, जिसके कारण श्री हरि के भक्त प्रह्लाद ने जन्म धारण किया। पाण्डवों की माता कुंवारी कुन्ती ने, दुर्वासा जी से उपदेश ग्रहण करके, सूर्य का स्तवक किया है, जिसके कारण महाबली और दानी कर्ण का जन्म हुआ। विदूषी गार्गी ने अपने कौमार्य-जीवन से लेकर ही नग्न रहकर ज्ञान-मार्गीय भक्ति की है; जिस कारण वह प्रकाण्ड ज्ञानिनी मानी जाती है और उसने न जाने कितने पुरुषों को ज्ञान के अखाडों में परास्त किया ? इन दृष्टान्तों से यही प्रतीति होती है कि स्त्रियों को भी गुरु धारण करके अपना जीवन सुधार लेना चाहिए। गुरु-शिक्षा के प्रति, जैसा कि कहा गया है :—

'ब्राह्मण: क्षत्रियोर्वैश्या: शुद्राणां वा स्त्रियोऽपि वा।
विष्णु भक्तिरता साधून दिक्ष्याया विधिना गुरु: ।।

श्री हरि, नारद से उपदेश करते हुए कहते हैं कि 'हे नारद ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और नारियों को भी भगवन्नाम-स्मरणादि करने के निमित्त, भक्ति में लीन किसी सच्चे साधु-महात्मा को ही गुरुवरण करना चाहिए। वे लम्पट साधु को कदापि गुरु न बनायें।

सच्चे सद्गुरु के लक्षणों के प्रति ऐसा कहा गया है कि वह कैसा होना चाहिए?

सद्गुरु साधो वाको कहिए, जो अगम की देवें गम।
हद्द बेहद्द सबै समझावैं, भानैं मन को भरम ।।

अगस्त्य संहिता में 'तारतम्य मंत्र' को ग्रहण करने वालों के प्रति; ऐसा कहा गया है कि :—

तदन्येषां देशिकेन व्यक्तव्यं तारकं परम्।
शुचि ब्रततमा: शूद्रा धार्मिका द्विज सेवका: ।।

स्त्रियः पतिव्रताश्चान्ये प्रतिलोमानुलोमजाः ।
लोकाश्चाण्डाल पर्यन्तं सर्वेप्यत्राधिकारिणः ।।

अगस्त्य संहिता से उद्धृत्

अर्थात् भव सागर पार करने के लिए, पवित्र मना, व्रतनिष्ठ, धर्मात्मा, द्विज, सेवक, शूद्र, पतिव्रता स्त्रियां, प्रतिलोमज अथवा अनुलोमज मनुष्य और चाण्डाल पर्यन्त मानव मात्र 'तारतम-मंत्र' को ग्रहण करने के अधिकारी होते हैं ।

जिस प्रकार पार्वती ने वामदेव से मंत्र ग्रहण करके और उनसे ही दीक्षा लेकर, योगनिष्ठता में प्रवीणता प्राप्त की थी; उसी प्रकार, उत्तर-कालीन नारियों ने भी, अपने सद्गुरुओं से मंत्र, शिक्षा और दीक्षा ग्रहण करके, अपना नाम संसार में उजागर किया है । मीराबाई ने अपने सद्गुरु श्री रविदास जी से शिक्षा-ग्रहण करके अनेक ऐसे पदों की रचनाएँ की हैं, जो प्रेमा:श्रित और ज्ञान:श्रित दोनों प्रकार की भक्तियों को प्रदर्शित करते हैं । प्रेमा:श्रित भक्ति के प्रति, उसका एक पद कितना मार्मिक है, देखिये :—

पदः-सांवरिया के संग-रंग मैं, होली कैसे खेलूं री ।।टेक।।
कौरे कौरे कलश मँगाये; इनमें भिगोया रंग ।
भर पिचकारी सांवरियाँ कै मारी, चोली हो गई दंग ।।१।।
चीर दुपट्टा सालूड़ा भिगोया, और भिगोया अंग ।
सांवरियां का क्या भिगोया, काली कम्बली संग ।।२।।
खंजरी झांझ इकतारा बाजै, और बाजै मृदंग ।
वृन्दावन की कुंज गली में, राधा ले लई संग ।।३।।
काली देह में नाग नथै है, कहीं मचाया दंग ।
मीरा कहै रविदास की चेली, हरि चरणों में उमंग ।।४।।

इसी भाँति प्रायः एक दूसरा पद भी सत्संगों में गाया जाता है । प्रक्षिप्तता की दृष्टि से इसको पूर्णरूपेण न तो मीराबाई का रचा हुआ पद और न सूरदास द्वारा निर्मित किया हुआ ही पद कहा जा सकता है । लेखक के चाचा श्री भरतू राम जी ने, जिस भाँति इस पद को सूरदास जी की छाप लगाकर गाया है, वैसे ही इसको यहाँ लिख दिया गया है, देखिये पद :-

पदः-मेरे जागे पूर्वले भाग री, पिया आण मिले फागुन में ।।टेक।।
रतन गुलाल ज्ञान की गोली । प्रितम के संग खेलूं होली ।।
भर पिचकारी भिगो दइ चोली, सोने में दो आग रही;
कुछ नफा मिलै जागन में ।।१।।

जो पिया चुंदरी रंगै हरि रंग में। मैं भी चुंदरी रंगू थ्यारै संग में।।
दोनों हो जावें एक ढंग में, धब्बा लगै नहिं दाग री—
हो चलो बेदागन में।।२।।

खंजरी झाँझ इकतारा बाजै। कृष्णा के मुख मुरली साजै।।
गोपी-ग्वाल सुन सुन कर लाजै, गावैं छतीसों राग री,
सुनकर हुई बैरागन मैं।।३।।

फागुन के दिन नीके बीते। मैं हारी मेरे बालम जीते।
सूरदास प्रभु मन के चीते, अटल (बना) रहै सुहाग री—
नहीं हंस मिलै कागन में।।४।।

ज्ञान-मार्गी भक्ति की कोई परिधि और विधि निश्चित् नहीं है। प्रत्येक मानव के हृदय में संकल्पों-विकल्पों का संवेग उभरता ही रहता है और 'जहां आशा, वहां वासा', ऐसी मन की सहज स्थिति के कारण मुक्ति और भुक्ति की आशा-निराशा उपजा करती ही हैं। जब अपने अन्तःकरण में संकल्पों-विकल्पों का आवेग प्रविष्ठ ही न होने दिया जाय; तब ऐसी स्थिति को 'मन की एकाग्रता' कहते हैं। जीवात्मा की अन्तिम स्थिति उसके मन की आशा और निराशा पर निर्भर होती है। ऐष्णाओं का दमन करने पर, नैराश्यता की अतीव महत्ता भी उत्तम ही समझी जाने लगती है। इसीलिए ज्ञान-मार्ग नैराश्यताओं का पंथ है, जिसमें अवघट-घाट को पार करते हुए, मुक्ति-धाम तक पहुंचना संभव हो सकता है, अन्यथा प्रेम-मार्ग में चलते हुए पुनिः भव-बन्धन में पड़ना भी हो सकता है। नैराश्यता के प्रति कपिल जी ने कहा है कि-

'निराशः सुखी पिङ्गलावत्' सांख्य दर्शन अध्याय चतुर्थ सूत्र ११

अर्थात् जो मानव अपने मन से आशाओं का परित्याग कर देता है; वह सदैव के लिए 'पिंगला वैश्या' के समान सुख की प्राप्ति कर लेता है। इसका दृष्टान्त इस प्रकार है कि काशी नगरी में एक 'पिंगला' नामक वैश्या रहा करती थी। एक दिन वह अपने द्वार पर जार पुरुषों के न आने के कारण निराश होकर शान्ति-पूर्वक सुख-शैय्या पर रात्रि भर विश्राम करती रही। निराशा को त्याग कर, वह सुखपूर्वक रात्रि भर सोने का विचार करके सो गई थी और जब प्रातःकाल, वह उठी तो, उसके मन में आनन्द का अतिरेक उमड़ आया। उसने अपने भावी जीवन को 'वैश्यावृत्ति' करने से रोक दिया और अन्त में भगवन्नाम जपन करती हुई वैकुण्ठ लोक पहुंची। अतएव नारियों! आशा का परित्याग करना भी मुक्ति का एक साधारण-सा-साधन होता है, क्योंकि नैराश्यता के कारण 'पिंगला वैश्या' मुक्ति को पाप्त कर गई थी।

परिशिष्ठ (ब)

दशम–पटल का अवशिष्ठ भाग

पृष्ठ ६९ पर प्रदर्शित रेखाचित्र को देखकर, आप सभी नर-नारियां या साधु-महात्मा समझ गये होंगे कि ब्रह्म की सोलह कलाओं और चार चरणों का; इसमें दिग्दर्शन कराया गया है।

ब्रह्म-सृष्टि के आठ आवरण, (१) काल, (२) स्वभाव, (३) नियति, (४) यदृच्छा (प्रकृति या प्रवृत्ति), (५) पंच-महाभूत (तत्त्व), (६) भग, (७) लिंग और (८) पुरुष; होते हैं। इन आवरणों में से प्रथम काल को 'काल-पुरुष' की संज्ञा दी जाती है। 'काल-पुरुष' से बचने के लिए आत्म-तत्त्व या जीवात्मा (पुरुष) स्वयं ब्रह्म पदों या चार चरणों और सोलन कलाओं का अपने अन्तरात्मा में आभास करता है। निम्न सारिणी द्वारा पुनः ब्रह्म के चार चरणों और सोलह कलाओं की समझावट दी जा रही है :-

क्रम संख्या	ब्रह्म-चरण	ब्रह्म की सोलह कलाएँ
१	प्रकाशवान् चतुष्कल	प्राची, प्रतीची, उदीची और दाक्षिणी दिक्कला
२	अनन्तवान् चतुष्कल	भू, अन्तरिक्ष, द्यू और समुद्र (जल) लोक कला
३	ज्योतिष्वान् चतुष्कल	अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा और विद्युत् तत्त्व कला
४	आयतवान् चतुष्कल	प्राण, चक्षु, श्रोतृ और मन इन्द्रिय-कला

अतः नारियों समझ लो ! जब जीवात्मा को, उपरोक्त चार ब्रह्म-चरणों और सोलह कलाओं का अन्तरात्मा के भीतर ही आभास होने लगता है; तब ही वह आत्मा ज्ञानाकार होकर ब्रह्माकार में विलीन हो जाता है। इस प्रकार जीवात्मा की मुक्ति होती है। मन में उठने वाले संकल्पों-विकल्पों को भी रोक देना चाहिए, क्योंकि इनके कारण भी 'ब्रह्म ज्ञान' के प्रति संदिग्धता जागृत होती रहती है, विभ्रम होता रहता है, शंकाएँ उठती रहती हैं और अज्ञानवश ब्रह्म की प्रतिभा अथवा उसकी कलाओं में अप्रतीति होने लगती है। इसीलिए ध्यान करते समय ऐसा स्मरण करना चाहिए कि :—

हृदयः हरेऽक्षरः बहिः रमन्ते निरन्तरम् ।
निष्कलः सकलः वा स्मरामि पुनः पुनः च ॥

नारियों! तुम्हे ऐसा ज्ञान भी प्राप्त कर लेना चाहिए, जिससे चार प्रकार

के ध्यान का तुम्हें पूर्ण ज्ञान हो जाय। ध्यान प्रक्रियाएँ चार प्रकार की होती हैं, जिनके करने मात्र से, उनके अनुरूप ही जीवात्मा की सद्गति या दुर्गति होती है। वें निम्न चार प्रकार की गति-विधियों में वर्गीकृत किये जाते हैं :—

१. रुद्र-ध्यान धरने से जीवात्मा को महाघोर नरक की यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं।

२. आर्त्त-ध्यान करने से सरीसृप (सर्प आदि) की योनियां धारण करके कष्ट उठाना पड़ता है।

३. धैर्य-ध्यान करने मात्र से देवकोटि की योनि धारण करनी पड़ती है और ४. शुक्ल-ध्यान धरने से मोक्षपद की कल्याणमयी स्थित-सुगति प्राप्त होती है।

बालिकाओं, छात्राओं अथवा शिक्षिकाओं—नारी वर्ग को सहज-ध्यान ही धरना अतीव श्रे:ष्ठ होता है। चित्रांकित वर्गाकार-आकृतियों के मध्यस्थ योगासन लगाकर; यदि वे ध्यान करती हुई, निम्नलिखित दृश्यों का आभास करती हैं, तो वे ऐसा समझें कि :-

(१) नेत्रों को मिलित करके, यदि उन्हें श्वेत वर्ण की आभा दृष्टिगोचर होती हो, तो उसको, ज्योति-स्वरूप आकाश-ब्रह्म समझें। 'ओं खं ब्रह्म-इति' जानें।

(२) यदि रक्त-वर्ण का आभास दृष्टिगोचर होता हो, तो उसको, ज्योति-स्वरूप 'प्रकाश-ब्रह्म' जानना चाहिए।

(३) यदि धूम्र-वर्ण का आभास दृष्टिगोचर होता हो तो, उसको 'महाकाश ब्रह्म' जानें।

(४) यदि नील-वर्ण का आभास दिखलाई पड़े तो, उसको 'शून्याकार ब्रह्म' जानना चाहिए।

और (५) यदि स्वर्ण-वर्ण (सूर्य प्रकाश जैसा सुनहला रंग) दृष्टिगोचर होता हो तो, उसको 'ज्ञानाकार ब्रह्म' समझना चाहिए और उसी की प्रतीति करनी चाहिए; जिससे सहज ही मुक्ति संभव हो सके।

अन्तःकरण :—पच्चीस प्रकृतियों से युक्त, इस पिण्ड में 'अन्त:करण' 'हृदयाकाश' में सूक्ष्म रूप से विराजमान रहता है। मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार, ये चारों मिलकर 'अन्त:करण' कहलाते हैं। इन्द्रियों से परे मन होता है, मन से परे बुद्धि होती है, बुद्धि से परे चित्त होता है और चित्त से परे अहंकार स्थित होता है। इन चारों के आयामों में दो-दो उपभेदों सहित, फुरनाएँ लगी रहती हैं। इनमें से मन की महत्ता अधिक होती है।

मन की विषय धारणा की कला का नाम एक मात्र 'ज्ञान कला' कहलाती

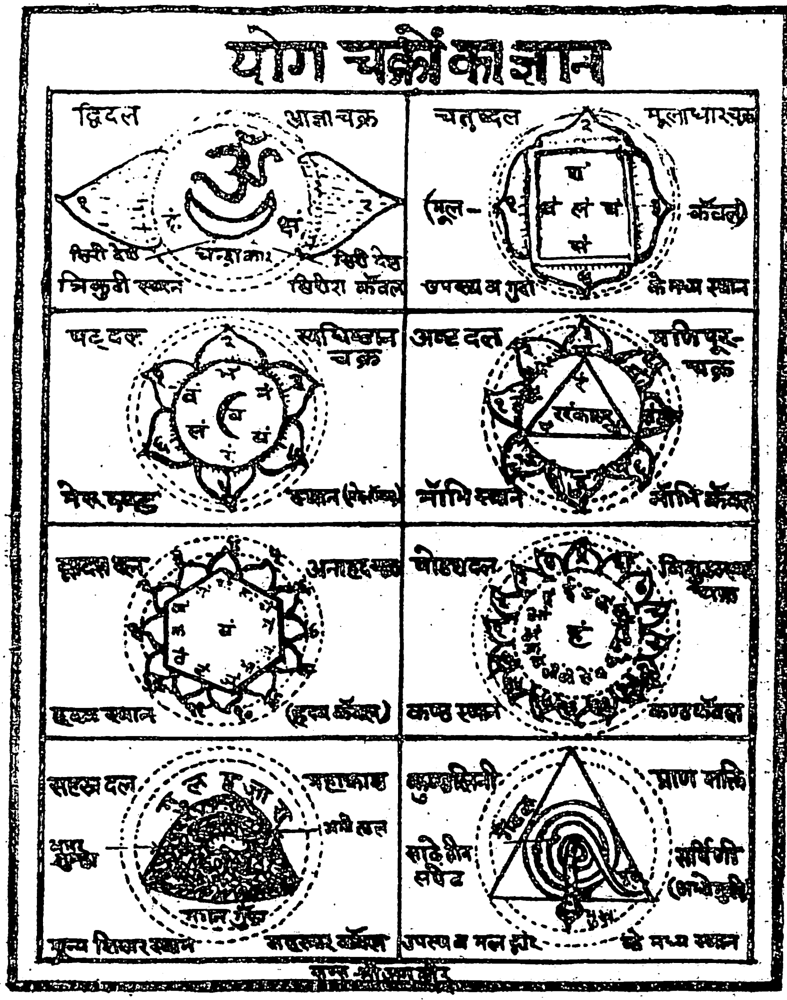
हैं। सांख्य दर्शन में कपिल मुनि ने मन की प्रवृत्तियां चित्त, बुद्धि और अहंकार होती हैं ऐसा कहा है। सांख्य दर्शन द्वितीयोऽध्याय के सूत्र ३० अर्थात् 'त्रयाणां स्वालक्षण्यम्' के अनुसार मन की तीन वृतियां चित्त, बुद्धि और अहंकार होती हैं। अभिमान करते समय अहंकार, विचार करते समय चित्त और ज्ञान प्राप्त करते समय बुद्धि; स्वत: विदित होती है। अतएव मन को सभी इन्द्रियो में प्रबल और शासता-इन्द्री माना गया है।

मन ही समस्त सृष्टि का मूल कारण कहा जाता है। यह अन्नमय-कोष में रहता है। कलियुग में अन्न के बिना प्राणी जीवित भी नहीं रह सकता है। योगी को भोग-लिप्सा छोड़नी ही पड़ती है। व्रतोपवासिनी नारियों को यथोचित समय और रीतिपूर्वक अल्पाहार करना चाहिए; जिससे वे भी; अपने अन्नमय-कोष को जीतकर, अपने मन को पृथ्वी-तत्त्व में एकीकरण कर सकती हैं। पृथ्वी तत्त्व की एकता जल-तत्त्व के साथ करें। जल-तत्त्व की एकता तेज-तत्त्व में करें। तेज-तत्त्व की वायु-तत्त्व में एकता करें। वायु-तत्त्व की आकाश-तत्त्व में एकता करके मन को उसमें लय करें। आकाश-तत्त्व के साथ अपने मन को लय करते हुए; उसकी अहंकार में एकता करें। अहंकार को महतत्त्व में लय करते हुए, योगीजन ही नहीं; अपितु नारियां भी ध्यान-मग्न होकर एवं चितवन् करती हुई—महतत्त्व में विराजमान ज्ञान-कला के रहस्य को जानने में दक्ष हो सकती हैं। ज्ञान-मुद्रा धारण की यही विधि है। दूसरी विधि, योग-मुद्रा धारण की होती है; जिसके विषय में थोड़ा सा ज्ञान, शरीर के अन्तर्गत सूक्ष्म चक्रों द्वारा कराया जा रहा है। (देखिये पृष्ठ ८५)

क्रियायोग के लिए तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान, इन तीनों के स्वरूपों की प्राप्ति करना आवश्यक होती है। रेचक, कुंभक, पूरक और स्तंभन, ये चार गतियां श्वांस-प्रश्वांस को रोंधने की होती हैं; जिनके करने मात्र से आत्म-सुख और अल्प समाधि (प्राणायाम) लग जाती है तथा ईश्वर के प्रति भजन-भाव की धारणा भी सुदृढ़ हो जाती है। सहज-समाधि जागते, उठते, बैठते, सोते, खाते-पीते और समस्त कार्य-व्यवहारों को करते हुए; लगी रहती है। विदेहपुरुष जनक और विदेही नारी गार्गी आदि के समान ऐसे अन्य विदेहियों में भी सहज-समाधि का संयोग बना ही रहता है, जिन्होंने योग-साधन का पूर्णतः अभ्यास किया होता है। सम्प्रज्ञात (सबीज या संकल्प) समाधि एक निशाना चलाने वाले अभ्यासी पुरुष के, प्रथम स्थूल वस्तु को बेंधने, के समान होती है और जब निशाना लगाने वाला निशाना लगाने में दक्ष हो जाता है, तब वह सूक्ष्म निशाना लगाता है। ठीक उसी प्रकार योगी-जन प्रथम स्थूल धारणा या सबीज-समाधि लगाता है और स्थूल-धारणा के

पूर्ण हो जाने पर वह, सूक्ष्म-धारणा या निर्बीज-समाधि, लगाने में दक्ष हो जाता है।

पृष्ठ ८४ देखिये :–



सबीज-समाधि धारण करने वाले योगीजन की मनोवृत्तियों के अभाव को करने वाला संस्कार शेष रह जाता है, तब तक वह विदेह (पुरुष) कहलाता है और संस्कारों के नष्ट हो जाने पर; योगी जन मुक्त हो जाता है, जिसका कारण संस्कार होता है—उसके द्वारा (योगी) निर्बीज-समाधि को धारण करता है।

निर्बीज-समाधि लगाने से सभी संस्कार नष्ट हो जाते हैं और ऐसे योगी की गति विदेह योगी से उपराम होती है।

श्रम-रहित निर्मल-योग साधने के लिए, पहले सतोगुणी-मनोवृत्तियों से चित्त को एकाग्र किया जाता है। ऐसा करने से समस्त चित्त-वृत्तियाँ रुक जाती हैं। निसंशय रूप से ऐसा जानना चाहिए कि केवल सतोगुणी वृत्ति के निरोध का नाम सम्प्रज्ञात-योग है, जिसके करने से बुद्धि में पूर्ण संस्कार शेष रह जाते हैं। पूर्व-संस्कारों का निरोध करने पर असंप्रज्ञात योग होता है। इन्हीं को 'सबीज' और 'निर्बीज' समाधियां भी पुकारा जाता है।

षट्चक्रों, कुण्डलिनी और सहस्र-दल कमल से युक्त ज्ञान-योग के चक्रों का जो चित्रण-अंकित है, उसके सम्बन्ध में संक्षेपरूपता से, वर्णन किया जा रहा है।

इन्द्रियों का कारणत्त्व आत्मा है और आत्मा को परिणामीत्त्व की प्राप्ति नहीं होती है, जिस प्रकार पारसमणि के स्पर्श मात्र से लोहा स्वर्ण हो जाता है; उसी प्रकार आत्मा की कसिस से, सभी इन्द्रियाँ-गुणकारी हो जाती हैं। आत्मा के संसर्ग से समस्त इन्द्रियों के गुणों को हटाकर केवल मन को उसके साथ विहरण करा देने से, शरीर के भीतर सूक्ष्म रूप से स्थित, सभी चक्रों को भी बेंध दिये जाते हैं। प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय–ये दस वायुऐ प्राण के साथ मिली होती हैं। जिस प्रकार कण्ठ-कँमल में रहने वाले उदान वायु को हृदय-कँवल पर रहने वाले प्राण-वायु से जोड़कर, उनकी गाँठ नाॅभि-कँवल पर लगाकर, उसको कूर्म नाड़ी के साथ जोड़ा जाता है, ऐसे ही गुदा में स्थित अपान वायु, नाॅभि में रहने वाली समान वायु और सारे शरीर में रहने वाली व्यान वायु को भी नाग, कृकलादि वायुओं से जोड़ कर व्रजनाड़ी आदि में, उनकी गाँठें लगाई जाती हैं—इस प्रकार की क्रियाएँ हठयोग के अन्तर्गत मानी गई हैं।

विदित हो कि श्वांस-प्रश्वांस की गतियां नाॅभि-कँवल तक ही होती हैं; उससे नीचे नहीं। प्राण वायु को सुरति-निरति के संयोग से ऊपर नीचे उतारा जाता है। अनाहद या हृद् कँवल अधोमुखी होता है; जिसमें बारह ऐरे या चक्र या दल होते हैं और वे क्रमशः स्पन्दन करते रहते हैं। रेचक क्रिया द्वारा हृत् कँवल को ऊर्ध्व-मुखी करके, उसके अन्दर वाली प्राण-वायु को सुषुम्ना-नाड़ी में संयमित कर दिया जाता है। ऐसा किया जाने पर चन्द्र-सूरज और तारागणों के प्रकाश के समान एक आभायुक्त प्रकाश दृष्टिगोचर होता है। यह आभा दो प्रकार की होती है–पहली है, ज्योतिष्मती; जिससे आत्म-ज्ञान होकर योगी को त्रिकालज्ञ ज्ञान हो जाता है और दूसरी है, विशोका जिससे सम्पूर्ण आधि-व्याधियों का नाश होकर, कल्याण की प्राप्ति होती है। मन की स्थिरता

का कारण भी ये ही होती हैं और मन के स्थिर हो जाने से हठयोग-समाधि हो ही जाया करती है। थोड़ा सा ज्ञान षट्चक्रों आदि के विषय में दिया जा रहा है; जिससे इस पुस्तक के पढ़ने मात्र से नारियां भी ऐसा ज्ञान प्राप्त कर सकने में; सामर्थ्यशालिनी हो जायें; इसीलिए इस पाठ में ऐसी व्याख्या की जा रही है :-

१. कुण्डलिनी :—इसको प्राणशक्ति, महाशक्ति, सर्पिणी और नागिनी आदि नामों से पुकारा जाता है। यह अग्निचक्र या मणिपूर चक्र में साढ़े तीन गुण्डलियां मार कर; उपस्थ और गुदा के मध्य-स्थान में अधोमुखी ठहरी हुई है और इसका सम्बन्ध षट् चक्रों के साथ जुड़ा हुआ है। योग साधना में सर्व प्रथम, इसको जागृत करना पड़ता है। जागृत होने पर; यह सुषुम्ना-नाड़ी के द्वारा 'त्रिकुटी' तक पहुंच कर कार्यरत जीवात्मा के साथ 'सपेरे और नागिन की भांति' हो जाती है। यदि योगी ने अपने योग से इसको बस में कर लिया हो, तो वह अमर हो जाता है, तथा इसके अवश होने पर, वह उल्टे रूप से उसी को खा जाती है। मनुष्यों की अपेक्षाकृत नारियों में यह आठ गुणी आसक्ति व कामाग्नि को प्रज्जवलित भी करती है-इत्यादि।

२. सहस्त्र-दल कंवल :—इसमें एक हजार दल, चक्र या पंखड़ियां होती हैं। शीर्ष-स्थान अर्थात् खोपड़ी के ऊपरी-भीतरी, भाग में यह औंधा मुख किए हुए दिखाई देता है। इसका आकार उल्टे प्याले के समान होता है। इसी के बीच में गगन गुँफा या भँवर गुँफा एवं अमी रस का सरोवर स्थित हैं। पूर्ण-प्रज्ञ-योगी गगन गुँफा में बैठकर, ध्यान करता है तथा अमी ताल में स्नान करता हुआ, उसी के अमीरस को पीता है। ब्रह्मरंध्र को भेदने-छेदने से जिह्वा पर अमीरस टपकने लगता है, जिस का पान करके जीवात्मा अमर होता है।

३. आज्ञा-चक्र :—यह द्विभुजाकार और दो दलों से युक्त होता है। इसका वर्ण सूक्ष्म, गुण स्मृति, स्थान त्रिकुटी, देवता शंभु, तत्त्व महत् (मन) और इसकी धातु शक्ति समाधिनी होती है। सोहंग का जाप करने से यहाँ पर उल्ट कर जीवात्मा हँस-हँस कहता हुआ स्वयं हंस रूप हो जाता है।

४. मूलाधार-चक्र :-यह वर्गाकार आकार वाला और चार दलों से युक्त होता है। इसका वर्ण-पीला, गुण-गंध, स्थान-मेरुदण्ड के नीचे, देवता-ब्रह्मा, वाहन-हँस, तत्त्व-पृथ्वी है और इसकी धातु-शक्ति डाकिनी (क्रिया) होती है। इसको जानने के लिए बीजाक्षर 'लं' है। शेष वर्णो का न्यास वं शं षं सं होता है। यह शरीर को स्तम्भ के समान स्थिर रखने में अत्यन्त सहायक होता है। अति कामुक नर-नारियों को; यह अत्यन्त निर्बल कर देता है। कुण्डलिनी का निवास इसी चक्र में रहता है।

५. स्वाधिष्ठान-चक्र :–इसका आकार अर्ध-चन्द्रमा के समान होता है। इसका वर्ण-श्वेत, गुण-रस, स्थान-मेरुदण्ड के मध्य, देवता-विष्णु, वाहन-गरुड़, और तत्त्व-जल होता है। इसकी धातु-शक्ति, राकिनी (मुद्रा) और बीजाक्षर लं होता है। इसमें षट् चक्र या दल होते हैं, जिन पर बं भं मं यं रं औत लं अक्षरों का न्यास किया जाता है। इसकी शक्ति घटने पर प्राय: पीठ मुड़ जाया करती हैं और अति:शय शक्ति बढ़ जाने के कारण, कूब निकल जाया करता है।

६. मणिपूर-चक्र :–यह त्रिभुजाकार होता है और इसमें आठ-दल होते हैं। इसका वर्ण-लाल, गुण-रूप, स्थान-नॉभि, देवता-शिव और यह निर्वाहन होता है। इसकी धातु-शक्ति या योगमुद्रा धारण की गति 'लाकिनी' कही जाती है। इसको वेंधने के लिए रं बीजाक्षर का प्रयोग किया जाता है। हमने 'ररंकार' को इसी चक्र के ऊपर स्थित बताया है। आठों दलों पर डं, ढं, णं, नं, त, थं, दं, धं, पं और फं, इन आठों अक्षरों का न्यास किया जाता है। 'नले की नाल में, नॉभि की गाल में–आत्मा का फेर' होता है अर्थात् नॉभि-कंवल पर आत्मा का स्थित निवास है–ऐसा योगी जनों ने बतलाया है।

७. अनाहद-चक्र :—इसका आकार षट् कोणाकार होता है और इसमें बारह दल होते हैं। यह धूम्र वर्ण का होता है। इसका गुण-स्पर्श और इसका स्थान हृदय में होता है। इसका देवता 'ईश्वर' है। इस निर्वाहन चक्र की धातु-शक्ति 'काकिनी' और तत्त्व वायु होता है। बीजाक्षर यं और वर्ण-न्यास कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञं, ट और ठं-का, प्रत्येक पंखड़ियों पर किया जाता है। इसके बिना प्राण वायु का संचरण नहीं हो सकता और इसके रुक जाने पर शरीर नश्वर हो जाता है। योगी इस चक्र को रोध कर प्राण वायु को त्रिकुटी आदि में चढ़ा लेते हैं।

८. विशुद्धाख्या-चक्र :—यह वृत्ताकार होता है तथा इसमें सोलह दल होते हैं। इसका वर्ण-नीला, गुण-शब्द, स्थान-कण्ठ और देवता 'सदाशिव' होता है। निर्वाहन इस चक्र का तत्त्व आकाश है और इसकी धातु-शक्ति 'हाकिनी' होती है। हं बीजाक्षर है और सोलह दलों पर अक्षरों का न्यास अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, ॠं, लृं, ॡं, एं, ऐं, ओं, औं, अ, अः होता है।

ऊपर वर्णित षट् चक्रों को भेद कर योगी अपने आप को अमर कर लेता है। निर्विकल्प रूप से समाधिस्थ होने पर 'लिव जाप' या 'अजपा जाप' होता है। लेखक की पढ़ने योग्य अन्य कृतियां छपकर तैयार हो गई हैं :—

१. विचार और वाणी—भाग दो २. दासानुदास-रविदास
३. प्रह्लाद चरित, ४. जपन-जोग-जप, ५. सन्त रविदास माहात्म्य

।। ॐ ररंकारम् ।।

।। आरती अलख पुरुष ।।

प्रभु जी ! कहाँ लौं आरती करैं ।
तेरी त्रिभुवन ज्योति बरैं ।। टेक ।।

खण्ड-पिण्ड-ब्रह्माण्ड सकल में, विधि-विधि ज्योति समानी ।
थाली गगन दीप रवि चन्दा, नौ लख तारा छिटकानी ।।१।।

फूटी किरण जगत में पसरी, मारुति चँवर ढुरावैं ।
अगम अतीत अनाहद वाणी, अनल ज्योति जरावैं ।।२।।

जल की झलक अगम की आभा, जग जीवन आधारी ।
अटल ध्यान धरै तेरा धरणी, भार अठारह धारी ।।३।।

ओहंग-सोहंग शब्द झंकृत, अनहद बाजे बाजैं ।
गावन हारे सदा तेरे द्वारे, जन जगबीर निवाजैं ।।४।।

जय सतगुरु बाबा रविदास जी को !